नई दिल्ली
रविवार, 20 सितंबर, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-48 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

नेशनल पार्क और टाइगर रिज़र्व के आस-पास बफ़र ज़ोन को छोटा करना क्यों बुरी खबर है 2
क्या बंगाली दुर्गा पूजा की सनातनी विधि अपना पाएंगे? 5

बेकार न जाए चेतावनी 7

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

ब्रिक्स के अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारत की पेंचीदा चाल

मोदी सरकार की कूटनीतिक मौकापरस्ती को गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत से जोड़ना नासमझी है

ब्रिक्स 2026 में 'नई दिल्ली घोषणापत्र' इसलिए संभव हो पाया क्योंकि इसमें उन सवालों से चतुराई से बचा गया, जिन पर समझौता अटक सकता था

अशोक स्वैन

राजनीतिक हवा के बदलते रुख को भांपकर नरेन्द्र मोदी सरकार ने 12-13 सितंबर को नई दिल्ली में आयोजित ब्रिक्स शिखर सम्मेलन के दौरान कूटनीति के कुछ हैरतअंगेज यू-टर्न ले लिए। कुछ समय के लिए ऐसा लगा मानो अमेरिका और इसराइल की जगह अब चीन और ईरान के मौसमी रंग हमारी विदेश नीति पर चढ़ चुके हों।

नरेन्द्र मोदी, शी जिनपिंग, व्लादिमीर पुतिन, मसूद पेजेशकियान और अन्य नेताओं के फोटो-ऑप को देखकर यह आभास होता है कि ब्रिक्स न केवल पूरी तरह जिंदा है, बल्कि भारत और चीन एक-दूसरे के लिए 'मतलब के यार' बन सकते हैं। ईरान ने भी गौर कर लिया कि मोदी रिश्ते सुधारने को बेताब हैं। हालांकि ये शब्द संयुक्त घोषणापत्र में दर्ज नहीं हैं, फिर भी अपने शुरुआती भाषण में मोदी ने दावा किया कि हम 'किसी के खिलाफ नहीं हैं; हम सबको साथ लेकर चलने की कोशिश करते हैं।'

मोदी के प्रचार तंत्र के लिए यह विदेश नीति में सरकार की 'रणनीतिक स्वायत्तता' का प्रमाण था। दावा यह है कि भारत सबसे बात करता है, किसी खेमे में नहीं बंधता और अपने विकल्पों को खुला रखता है। लेकिन जिस तरफ हवा बहे उसी ओर मुड़ जाना गुटनिरपेक्षता नहीं है, चाहे आप इसे 'रणनीतिक स्वायत्तता' का भारी-भरकम नाम ही क्यों न दे दें। भारत के विदेश नीति प्रतिष्ठान के ये ताजा पैंतरे भले ही बहुत चतुर लगें और दरबारी मीडिया साझा बयान को लेकर चाहे जितना ढोल पीट रहा हो, इस शिखर सम्मेलन ने एक बार फिर साफ कर दिया है कि भारत की विदेश नीति किसी दीर्घकालिक राष्ट्रीय हित के बजाय फौरी अवसरवादिता से निर्देशित हो रही है।

रणनीतिक स्वायत्तता या गुटनिरपेक्षता का मतलब कभी भी प्रतिस्पर्धी महाशक्तियों से बराबर दूरी बनाकर खड़े रहना नहीं था। इसका असल मतलब किसी महाशक्ति के दबाव के आगे घुटने टेकने के बजाय भारत के संप्रभु हितों में राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य फैसले लेने की आजादी को अक्षुण्ण रखना था। बहुपक्षीय-संतुलन उस परंपरा की आधुनिक अभिव्यक्ति हो सकता है, लेकिन इस बाजीगरी की कामयाबी के लिए रिश्तों के उतार-चढ़ाव के बीच भी अपने बुनियादी लक्ष्यों में निरंतरता बनाए रखना जरूरी होता है।

कुशल शिखर कूटनीति एक बात है और साझा भू-राजनीतिक दृष्टिकोण बिल्कुल दूसरी बात

मोदी राज में चीन के साथ भारत के रिश्ते इसका सबसे मुफीद उदाहरण है।

गलवान घाटी के खूनी संघर्ष के छह साल बीत चुके हैं, जिसमें भारत के 20 जांबाज सैनिक शहीद हुए थे। उसके बाद चीन द्वारा 2,000 वर्ग किलोमीटर से अधिक भारतीय भू-भाग पर किया गया कब्जा आज भी अनसुलझा है। विवादित हिमालयी सीमा पर भारी सैन्य जमावड़ा बना हुआ है और चीन लगातार भारतीय सीमा में घुसपैठ की कोशिशों में जुटा है। इसके अलावा, चीन आज भी पाकिस्तान का मुख्य सैन्य मददगार और भारत की सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा बना हुआ है। इसके बावजूद, सात वर्षों में पहली बार भारत आए शी जिनपिंग के स्वागत में दिल्ली में लाल कालीन बिछा दिया गया। मोदी और शी ने कारोबारी रिश्तों, परिवहन और जन-संवाद के विस्तार के बड़े-बड़े वादे किए और सीमा विवाद के सर्वमान्य समाधान की पुरानी रट फिर दोहरा दी।

चीन से बातचीत करना समझदारी है, इसमें कोई दो राय नहीं-दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था और अपने सबसे ताकतवर पड़ोसी से मुंह फेर लेना मूर्खता ही होगी। लेकिन सवाल यह है कि इस ताजा मेल-मिलाप में भारत को ठोस रूप से क्या हासिल हुआ? दोनों पक्षों ने एक-दूसरे को क्या पारस्परिक रियायतें दीं?

सोमवार को चीनी विदेश मंत्रालय ने ऐलान किया कि मोदी ने शी जिनपिंग को आश्वस्त किया है कि भारत 'अपनी जमीन पर किसी भी ताकत को चीन-विरोधी गतिविधियों की इजाजत नहीं देगा।' यह कूटनीतिक असंतुलन आंखें खोलने वाला है। चीन की तरफ से क्या ऐसा ही कोई आश्वासन मिला कि उसकी जमीन, उसका सैन्य-औद्योगिक तंत्र और उसकी खुफिया एजेंसियां भारत के खिलाफ साजिशों को बढ़ावा नहीं देंगी? क्या बीजिंग ने यह भरोसा दिया कि भारत के साथ किसी टकराव की सूरत में वह पाकिस्तान को दी जाने वाली सैन्य और साजो-सामान की मदद पर लगाम कसेगा?

बीजिंग के सामने यह समर्पण भारत की आर्थिक लाचारी को भी बेनकाब करता है। 'आत्मनिर्भर भारत' की सालों-साल चली लफ्फाजी के बाद हकीकत यह है कि चीनी आयातों पर भारत की निर्भरता बेतहाशा बढ़ी है। व्यापार संतुलन पूरी तरह हमारे खिलाफ झुका हुआ है और पिछले वित्त वर्ष में चीन से होने वाला आयात 132 अरब डॉलर के ऐतिहासिक स्तर को छू गया।

जब सीमा विवाद को सुलझाने की कोई पुख्ता पहल नहीं हुई, न पाकिस्तान को लेकर चीन की तरफ से कोई गारंटी मिली और न ही भू-राजनीतिक हितों में कोई बुनियादी तालमेल बैठा, तो फिर यह गलबहियां किस बिना पर हैं? चीनी मशीनरी, इलेक्ट्रॉनिक्स और कच्चे माल पर भारत की भारी निर्भरता- जो चीन को साधने की एक लाचार मजबूरी है- के अलावा भारत अपनी कथित 'रणनीतिक स्वायत्तता' के दम पर इस रिश्ते में अपनी कौन सी शर्त मनवा पाया है? ट्रंप प्रशासन के साथ व्यापार वार्ताओं में मुंह की खाने के बाद आनन-फानन में विकल्प तलाशने की इस हताशा को क्या 'रणनीतिक स्वायत्तता' कहा जाएगा?

*

पेजेशकियान के प्रति अचानक उमड़े अगाध प्रेम का नजारा भी उतना ही हास्यास्पद होता, अगर लोग कैमरे के सामने मोदी की नौटंकी देखने के आदी नहीं होते। प्रधानमंत्री के रूप में अपने ज्यादातर कार्यकाल में मोदी ने इसराइल के साथ गलबहियां कीं और नेतन्याहू के साथ उनकी 'निजी केमिस्ट्री' जगजाहिर रही है। दोनों नेताओं ने दोस्ती के कसीदे पढ़े और रक्षा एवं खुफिया तालमेल को चरम पर पहुंचाया। फिलिस्तीन में इसराइल द्वारा छेड़े गए नरसंहारक युद्ध में भारत पूरी तरह इस्राइल के पाले में खड़ा नजर आया- राजनयिक और सैन्य रूप से उसका खुला समर्थन किया गया, जो 1948 में इसराइल के वजूद में आने के बाद से फिलिस्तीन-इसराइल मुद्दे पर भारत के ऐतिहासिक और संतुलित रुख से 180 डिग्री का भटकाव था।

लेकिन नेतन्याहू अक्तूबर में एक ऐसे चुनाव का सामना कर रहे हैं जिसे वह बुरी तरह हार सकते हैं। उधर ट्रंप के सामने भी नवंबर के मध्यावधि चुनाव हैं और उनकी राह भी आसान नहीं दिखती; इसके बाद उनकी सियासी ताकत काफी कमजोर हो सकती है। अचानक मोदी को यह समझ आया कि वाशिंगटन और यरुशलम के इन घिरे हुए नेताओं की गोद में बैठे दिखना अब उनके सियासी स्वास्थ्य के लिए सही नहीं है। तो क्या दिल्ली में पेजेशकियान पर लुटाए गए अतिरिक्त लाड-प्यार का असली राज यही है? मोदी ने खाड़ी संघर्ष के बीच समुद्री जहाजों की आवाजाही और व्यापार की सुरक्षा पर जोर देते हुए उनके साथ लंबी बैठकें कीं। क्या ईरान के साथ 'सदियों पुराने सभ्यतागत रिश्तों' की दुहाई देने और 'दीर्घकालिक साझी जीत' के जुमले उछालने के पीछे यही घबराहट काम कर रही थी? एक बार फिर, ईरान से रिश्ते साधना कोई गलती नहीं है, लेकिन सवाल तो यह है कि क्या इस दिखावे में रत्ती भर भी विश्वसनीयता बची है?

ईरान हमेशा से भारत के दीर्घकालिक हितों के लिए अहम रहा है। वह ऊर्जा के अहम रास्तों को नियंत्रित करता है। चाबहार बंदरगाह परियोजना, जहां अमेरिकी धौंस के आगे झुकते हुए भारत ने अपना काम समेट लिया है, पाकिस्तान को दरकिनार कर अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक भारत की सीधी पहुंच का जरिया थी। होर्मुज जलडमरूमध्य की स्थिरता सीधे तौर पर भारत की ऊर्जा सुरक्षा से जुड़ी है। ये जमीनी हकीकतें 2026 में अचानक पैदा नहीं हुई हैं; ये उस वक्त भी मौजूद थीं जब मोदी बाहें फैलाकर नेतन्याहू का स्वागत कर रहे थे। बदला सिर्फ इतना है कि अब इन हकीकतों की अनदेखी करने की भू-राजनीतिक कीमत बहुत अधिक हो चुकी है।

ईरान, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, चीन और रूस जैसे धुर विरोधी देशों को तमाम गहरे मतभेदों के बावजूद एक मंच पर लाना आसान नहीं रहा होगा। लेकिन यह आम सहमति सिर्फ इसलिए मुमकिन हो सकी क्योंकि नई दिल्ली घोषणापत्र ने बड़ी चालाकी से उन तमाम सुलगते सवालों पर पर्दा डाल दिया जिनपर सहमति टूट सकती थी। घोषणापत्र ने पश्चिम एशिया में 'अत्यधिक संयम' बरतने का आह्वान तो किया, लेकिन नागरिक ठिकानों और परमाणु प्रतिष्ठानों पर हमले करने वाले असली अपराधियों का नाम तक लेने से परहेज किया; उसने अमेरिका का नाम लिए बिना टैरिफ और एकतरफा प्रतिबंधों की निंदा करके खानापूरी कर ली।

एक शिखर सम्मेलन आयोजित करने के लिहाज से यह कूटनीतिक बाजीगरी अच्छी हो सकती है, लेकिन इसे साझा भू-राजनीतिक नजरिया नहीं कहा जा सकता- ठीक वैसे ही जैसे ब्रिक्स की मेजबानी करने भर से मोदी 'ग्लोबल साउथ' की आवाज नहीं बन जाते। निश्चित ही, अमेरिका और इस्राइल ने इन पैंतरों पर गौर किया होगा। चीन और ईरान भी भारत के इस छद्म अपनत्व को निष्ठा या किसी ठोस प्रतिबद्धता के रूप में देखने की भूल नहीं करेंगे। बीजिंग अच्छी तरह जानता है कि भारत का वाशिंगटन के साथ रक्षा गठबंधन और क्वाड में उसकी साझेदारी बदस्तूर कायम है। तेहरान भी नहीं भूलेगा कि भारत ने हमलावर इसराइल का साथ दिया और जब युद्ध के दौरान ट्रंप ने शिकंजा कसा, तो भारत ने कैसे अपने आर्थिक रिश्ते ठंडे बस्ते में डाल दिए।

दुनिया का हर मुल्क भारत के साथ लेन-देन करेगा क्योंकि भारत का विशाल बाजार एक बड़ा आकर्षण है। लेकिन वे विशुद्ध कारोबारी अंदाज में ही पेश आएंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि मोदी के नेतृत्व में भारत की विदेश नीति किसी मजबूत भू-राजनीतिक विजन पर नहीं टिकी है, बल्कि उनकी 'रणनीतिक स्वायत्तता' असल में फौरी राजनीतिक सहूलियत और अवसरवादिता का ही दूसरा नाम है। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्साला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं

'न्यू इंडिया' में एसआईआर और दोषी होने की धारणा

जब आप पर टैक्स लगाया जाता है, तो आप भारतीय होते हैं; जब आप वोट देते हैं, तो आप शक के दायरे में होते हैं

आकार पटेल

सुनवाई के दौरान मौजूद रहना जरूरी है। कृपया इसे आवश्यक समझें और बिना किसी भूल के शामिल होने के लिए ज़रूरी इंतज़ाम करें।

मैंने वाट्सएप पर आए एसआईआर नोटिस को नज़रअंदाज़ करने और सुनवाई में न जाने का फ़ैसला किया था। लेकिन फिर मेरी पत्नी मुझसे एक दिन पहले ही वहां चली गईं। उन्होंने बताया कि नोटिस भेजने वाला अधिकारी इस बात से नाराज़ था कि मैंने उसके वाट्सएप मैसेज का कोई जवाब तक नहीं दिया।

ऊंचे ओहदे का अपना एक मुकाम होता है, इसलिए मैं उसके सामने कागज़ों की उस पुरानी फाइल के साथ पेश हुआ, जो यह साबित करती है कि मेरा अस्तित्व है और मैं उन लोगों को चुनने के काबिल हूं जिन्हें हम सम्मानपूर्वक 'जनसेवक' कहते हैं।

वहां परेशान और घबराए हुए लोगों की भीड़ थी—जैसा कि ऐसी जगह पर होना स्वाभाविक है जहां अनिश्चितता और अव्यवस्था आम बात हो, और जहां इस सरकार ने बिना वजह और ज़्यादा अनिश्चितता पैदा कर दी हो।

तकनीकी जगत के लोगों को 'डिसरप्शन' (बड़ी उथल-पुथल या बदलाव) शब्द बहुत पसंद है और वे इसे अच्छे या सकारात्मक अर्थ में इस्तेमाल करते हैं, लेकिन असल में यह एक हिंसक शब्द है। आखिर किन लोगों की ज़िंदगी में उथल-पुथल मचती है और किस मकसद से? इस बारे में कोई नहीं सोचता, या शायद ही कभी सोचा जाता है। अपनी ज़िंदगी में आने वाली इस उथल-पुथल के मामले में गरीब और हाशिये पर रहने वाले लोगों की कोई असल राय या भूमिका नहीं होती।

बहरहाल, वह अधिकारी असल में एक टीचर निकला जो पढ़ाने के बजाय अक्तूबर तक यही काम करने वाला है। वह मिलनसार, विनम्र और काबिल था और उसने कुछ ही मिनटों में यह प्रक्रिया पूरी कर ली। अक्सर ऐसा ही होता है और मैंने देखा है कि सरकारी कामकाज से सीधे जुड़े लोग ऐसे ही होते हैं, भले ही उनसे अजीबोगरीब काम करने को कहा जाए। इसमें वे कई अधिकारी भी शामिल हैं जिन्होंने हमारे ऑफ़िस पर छापे मारे थे और जिन्हें मेरे ख़िलाफ़ केस दर्ज करने वगैरह के आदेश दिए गए। असल में, कमांड चेन में ऊपर के स्तर पर ही दुर्भावना, अक्षमता और—जैसा कि आजकल अक्सर देखने को मिलता है—एक तरह की बेतुकी स्थिति मौजूद है।

मेरे दस्तावेजों की फ़ाइल बुरी हालत में है, और इसकी वजह कुदरत और इंसान—दोनों ही हैं। और साफ़ कहूं, तो ऐसे इंसान की वजह से जो खुद को भगवान समझता है। मेरा जन्म प्रमाणपत्र (बॉम्बे के नानावटी हॉस्पिटल का) और स्कूल छोड़ने का सर्टिफ़िकेट (सर जेजे इंग्लिश स्कूल का) 2006 में सूरत में आई बाढ़ में बह गए थे। दरअसल, 'मिनिमम गवर्नमेंट' (कम-से-कम सरकारी दखल) की वजह से ऊपर की तरफ़ बने बांध में पानी जमा हो गया और फिर 'मैक्सिमम गवर्नेंस' (ज़्यादा-से-ज़्यादा सरकारी दखल) ने बिना किसी चेतावनी या तैयारी के उसे छोड़ दिया, जिससे शहर के किनारे वाले इलाकों में बाढ़ आ गई थी।

यही उन परेशान भारतीयों की कहानी है जो यह साबित करने की कोशिश कर रहे हैं कि वे यहीं के हैं

'नए भारत' में कई कानूनों में दोषी होने की धारणा को ही आधार बना लिया गया है

मेरे माता-पिता को अपनी छत पर अकेले और बिना किसी मदद के चार दिन बिताने पड़े थे, और इस दौरान उनका ज़्यादातर सामान खो गया था। तो फिर पेश करने के लिए अब और क्या बचा है? ज़ाहिर है, मेरा पासपोर्ट कोर्ट के पास ज़ब्त है। मुझे लगता है कि जब मुझ पर टैक्स लगाने या केस करने की बात आती है, तो सरकार मुझे भारतीय मानती है, लेकिन वोटिंग के समय उसे शक होता है कि मैं भारतीय नहीं हूं। मैं सोचता हूं कि देश भर में मेरे जैसे दूसरे 'अपराधी' इस अजीब स्थिति का सामना कैसे कर रहे होंगे।

खैर, मेरे पास अभी भी कुछ कागज़ात हैं — जैसे बैंक स्टेटमेंट, प्रॉपर्टी के कागज़ वगैरह — जो जमा किए जा सकते थे और उन्हें स्वीकार भी कर लिया गया। हो सकता है कि ये काफ़ी हों, या न भी हों। यह तो आगे पता चलेगा। लिस्ट से नाम हटा दिया जाना और फिर प्रताड़ना के दौर से गुज़रना ज़्यादा रोमांचक होगा। असम में, जो लोग बेरहम सरकार को अपनी नागरिकता का सबूत नहीं दे पाए, उनसे वोट देने का अधिकार तो छीना ही गया, साथ ही उन्हें जेल भी भेज दिया गया। ज़रा सोचिए उन लोगों का क्या होता होगा जिन्हें एक दिन पता चलता है कि उनके बैंक अकाउंट, लाइसेंस और पासपोर्ट अब मान्य नहीं रहे।

और हां, देश से निकाले जाने की ये सारी कहानियां भी हैं। मुझे उम्मीद है कि मुझे किसी सभ्य देश, शायद दक्षिण-पूर्व एशिया में भेजा जाएगा। मुझे चीन जाने में भी कोई दिक्कत नहीं होगी, जो मानवता का उभरता हुआ सितारा है; हालांकि सच कहूं तो, संस्कृति और खान-पान के लिहाज़ से मैं किसी दूसरे दक्षिण एशियाई देश में ज़्यादा सहज महसूस करूंगा।

अपनी किस्मत और इस सरकार को देखते हुए, ऐसा शायद ही होगा। इसके बजाय, मुझे यहीं रोककर रखा जाएगा—बिना वोट देने के अधिकार के—लेकिन मुझसे 'वंदे मातरम' के सभी छह छंद खड़े होकर गाने को कहा जाएगा। लोकतंत्र की जननी सम्मान और श्रद्धा की मांग तो करती है, लेकिन यह रिश्ता एकतरफ़ा है। आपको यह साबित करना होता है कि आप उसकी संतान हैं; अगर इस पर गौर करें, तो यह एक अजीब स्थिति है।

'न्यू इंडिया' में कई कानूनों में यह मान लिया जाता है कि आरोपी ही दोषी है। आतंकवाद और नशीले पदार्थों से जुड़े कानूनों में पहले से ही ऐसा प्रावधान था। 2015 में इसे बीफ़ (गोमांस) रखने के मामलों में भी लागू कर दिया गया। इसमें आरोपी को ही यह साबित करना होता है कि वह दोषी नहीं है। 2018 में इसे 'लव जेहाद' कानूनों में भी शामिल कर लिया गया। असम ने नागरिकता के मामले में ऐसा करने का रास्ता दिखाया और आज हम यहां पहुंच चुके हैं।

क्या कुछ समय पहले ही भाजपा अनिवार्य वोटिंग पर कानून बनाने की बात नहीं कर रही थी? पता नहीं उसका क्या हुआ और क्यों उनका रुख 'हर किसी को वोट देना चाहिए' से बदलकर 'कोई तब तक वोट नहीं दे सकता, जब तक वह यह शुद्धता की परीक्षा पास न कर ले' हो गया। उनसे सिद्धांतों पर एक जैसा बने रहने की उम्मीद करना वैसा ही है जैसे उनसे इंसानियत या तहज़ीब की उम्मीद करना।

पहले मैं इस प्रक्रिया और वोट देने का अधिकार छिन जाने के ख्याल से बहुत परेशान हो जाता था (मैं तो सुबह-सुबह ही बूथ पर लाइन में लग जाता था)। अब मैं इसे लेकर ज़्यादा शांत हूं और सच कहूं तो मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। इस देश के लोगों के लिए मेरे मन में बहुत प्यार है; लेकिन देश की बाकी चीज़ों के लिए मेरे मन में बहुत कम, या शायद बिल्कुल भी लगाव नहीं है।

न्यूयॉर्क शहर के मेयर ने पिछले साल अपने शानदार प्रचार अभियान के दौरान एक ऐसी वोटर से मिलने की बात शेयर की थी जिसके लिए न्यूयॉर्क को लेकर जज्बा ही बदल गया था। उसने कहा था, "मैं न्यूयॉर्क से प्यार करती थी," लेकिन, "अब यह सिर्फ वह जगह है जहां मैं रहती हूं।"

बात तो एकदम सटीक है। ■

फोटो: जेटी इमेजेज

नए खतरों का सामना कर रहा पर्यटकों को आकर्षित करने वाला यूनेस्को द्वारा घोषित वर्ल्ड हेरिटेज काज़ीरंगा

काज़ीरंगा बच पाएगा?

पार्क और टाइगर रिज़र्व के इर्दगिर्द बफ़र ज़ोन कम करना बुरी खबर

रश्मि सहगल

जंगल की ज़मीन हथियाने का मौक़ा दिखते ही हमारे राजनेता एक-दूसरे को नोच-खाने पर आमादा दिखाई देते हैं। वरना, भला असम सरकार काज़ीरंगा नेशनल पार्क और टाइगर रिज़र्व के आस-पास के इको-सेंसिटिव ज़ोन (ईएसजेड) का दायरा 10 किलोमीटर से घटाकर 1 किलोमीटर क्यों करना चाहेगी? असम के मुख्यमंत्री हिमंत बिस्वा सरमा की इस घोषणा, कि वह आगे बढ़ने से पहले पर्यावरण और वन मंत्रालय से अंतिम नोटिफ़िकेशन का इंतज़ार कर रहे हैं, ने हलचल मचा दी है। बफ़र ज़ोन घटाने से स्थानीय आधारभूत संरचना और नागरिक परियोजनाओं पर लगी पाबंदियां हट जाएंगी, जिनमें बोकाखाट में एक आधुनिक स्टेडियम, एक व्यावसायिक पर्यटन परिसर और अन्य नागरिक सुविधाएं शामिल हैं।

तीन फाइव-स्टार होटल, एक कन्वेंशन सेंटर और एक एलिवेटेड कॉरिडोर जैसी योजनाएं भी हैं। काज़ीरंगा के इंगले पाथर में प्रस्तावित लक्ज़री रिज़ॉर्ट के लिए ज़मीन 99 साल की लीज़ पर पहले ही दी जा चुकी है। जुनिपर होटल से जुड़ा यह रिज़ॉर्ट कथित तौर पर हयात समूह की एक सब्सिडियरी कंपनी है। ग्रुप 10 एकड़ ज़मीन पर 106 कमरों वाला लक्ज़री होटल बनाने की तैयारी में है, जो 2030 तक चालू हो जाएगा।

पर्यावरणविदों ने चेताया है कि इंगले पाथर लगभग 300 हाथियों का आवास है और निर्माण तथा बढ़ती इंसानी मौजूदगी से यहां इंसान और जानवरों के बीच टकराव बढ़ेगा और देश में जंगली हाथियों के लिए बचे चंद सुरक्षित ठिकानों में से एक नष्ट हो जाएगा।

बीते तीन दशकों में, 1,000 वर्ग किलोमीटर में फैले इस पार्क की अहमियत वन्यजीवों के बचे-खुचे चंद खास ठिकानों में से एक के तौर पर रही है। यहां के वनकर्मियों की समर्पित टीम लुप्तप्राय प्रजातियों, खासकर एक सींग वाले गैंडे को बचाने और उनकी संख्या बढ़ाने में मददगार रही है। (दुनिया के एक सींग वाले गैंडों की आबादी का दो-तिहाई हिस्सा काजीरंगा में ही पाया जाता है।)

राज्य सरकार भले ही कहे कि मंत्रालय से अभी तक कोई औपचारिक अनुरोध नहीं किया गया है, लेकिन सुप्रीम कोर्ट स्थिति पहले ही उलझा चुका है। 2023 के अपने फैसले में कोर्ट ने कहा था कि अनिवार्य ईएसजेड स्थान के अनुरूप होने चाहिए, और इनका निर्धारण इलाके की बनावट, स्थानीय हालात और वन्यजीवों के व्यवहार के आधार पर होना चाहिए। यानी, एक किलोमीटर का सुरक्षा दायरा भी पक्का नहीं बचा था।

नतीजतन, कई राज्यों ने बफर ज़ोन कम या खत्म कर दिया। 'विधि सेंटर फॉर लीगल पॉलिसी' द्वारा 109 राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों के शुरुआती विश्लेषण से पता चला कि 60 राष्ट्रीय उद्यानों ने ईएसजेड पूरी तरह खत्म कर दिए। जानवर पार्कों और अभयारण्यों में तय सीमाओं के भीतर ही सीमित किए जा रहे हैं। काज़ीरंगा भी इसी राह पर है।

ईएसजेड घटाने या खत्म करने को सही ठहराते हुए राज्य सरकारों का तर्क है कि यह बाहरी इलाकों में रहने वाले ग्रामीणों के लिए आधारभूत ढांचा और रोज़मर्रा की गतिविधियां बेहतर बनाने में मददगार होता है, लेकिन काज़ीरंगा के बाहरी इलाकों में रहने वालों की कहानी कुछ और ही है। इंगले पाथर के 45 आदिवासी परिवारों का दावा है कि उनकी खेती और चराई की ज़मीन ज़बरन ले ली गई। अन्य बेदख़ल लोगों का कहना है कि वे तब तक ज़मीन का टैक्स भरते रहे, जब तक कि 2022 में राजस्व अधिकारियों ने टैक्स वसूलना बंद नहीं कर दिया। कुछ का दावा है कि उन्हें प्रति परिवार तीन लाख रुपये मुआवजे की पेशकश हुई थी, जिसे वे अब तक ठुकराते आए हैं।

हालांकि लोगों की राय विभाजित है। कुछ मानते हैं कि पर्यटन से इलाके को आर्थिक लाभ होगा। तमाम लोग, खासकर सरकारी कल्याणकारी योजनाओं की लाभार्थी महिलाएं भाजपा सरकार के पक्ष में हैं। वहीं, कुछ लोग पक्के 'म्यादी' पट्टे के कागज़ात होने के बावजूद भयभीत हैं। ये कागज़ात तब जारी हुए थे, जब अंग्रेज़ उनके पूर्वजों को बंधुआ मज़दूर बनाकर यहां लाए थे। उनकी आजीविका पर्यावरण पर निर्भर है और वे इसे नष्ट नहीं होने देना चाहते।

एक जाने-माने पर्यावरणविद् ने बताया, "असम कभी 'सुनहरे बगीचों का देश' कहा जाता था। (यहां 'बगीचे' शब्द का इस्तेमाल न सिर्फ़ चाय बागानों, बल्कि यहां के सब-ट्रॉपिकल (उपोष्णकटिबंधीय) जंगलों और अनोखे वन्यजीवों के लिए भी है।) विकास की होड़ ने यहां के प्राकृतिक संसाधनों और वन्यजीवों के रहने की जगहों पर गहरा असर डाला है।

स्थानीय लोग पार्क से बाहर जाने वाले हाथी और बाघों के नौ अहम कॉरिडोर के इर्दगिर्द चोरी-छुपे माइनिंग की बात कहते हैं। हालिया मीडिया रिपोर्टों में 'परबारी कॉरिडोर' लुप्त होने की बात कही गई है; जो एक अहम वन्यजीव गलियारा है और पार्क को कार्बी आंगलोंग की पहाड़ियों से जोड़ता है।

काजीरंगा वाइल्डलाइफ़ सोसाइटी की प्रमुख मुबीना अख्तर के लिए ये सरकारी योजनायें समझ से परे हैं। काजीरंगा एलिवेटेड कॉरिडोर प्रोजेक्ट, जिसका उद्घाटन प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 18 जनवरी 2026 को किया, में टाइगर रिज़र्व के कोर ज़ोन से 20.4 हेक्टेयर वन भूमि और मौजूदा ईएसजेड से लगभग 365 हेक्टेयर भूमि को दूसरी तरफ़ मोड़ना शामिल है। इसमें पार्क से गुज़रने वाले हाईवे का चौड़ीकरण और जखालाबंधा-बोकाखाट के आस-पास 21 किलोमीटर लंबा ग्रीनफ़ील्ड बाईपास बनाना भी शामिल है।

अख्तर ने कहा, "मैं नहीं समझ पाती कि राज्य सरकार ने काज़ीरंगा से सिर्फ़ 20-30 किलोमीटर दूर जखालाबंधा और बोकाखाट में होटलों के लिए ज़मीन क्यों नहीं दी। यह अत्यंत जैव-विविधता वाला पार्क है और इसका दायरा कम करते हुए पर्यटन बढ़ाना, ज़ाहिर है जानवरों की ज़िंदगी पर असर डालेगा।"

बारिश में ईएसजेड अत्यंत अहम होता है। बाढ़ के दौरान, जब ब्रह्मपुत्र नदी पार्क के दक्षिण में बहती है, जानवर उत्तर की ओर बफ़र ज़ोन में चले जाते हैं। कार्बी आंगलोंग का ढालमारा इलाका उनके लिए पनाहगाह बन जाता है। अख्तर की नज़र में "इसे बचाने की ज़रूरत है।"

काज़ीरंगा के डीएफओ अरुण विग्नेश एलिवेटेड कॉरिडोर का बचाव करते हुए कहते हैं कि इससे वाहनों से टकराकर होने वाली जानवरों की मौतें कम होंगी। गुवाहाटी यूनिवर्सिटी का अध्ययन बताता है कि अकेले 2016-17 में ही 6,036 जानवर मारे गए थे।

हालांकि एक वरिष्ठ रिटायर्ड वन अधिकारी की राय इससे बिल्कुल अलग हैः "कुछ भी ठीक नहीं है। काज़ीरंगा मुख्य रूप से घास का मैदान है। घास बनाए रखने के लिए, इसे हर साल जलाना पड़ता है। यह काम ठीक से नहीं हो रहा और घास का मैदान सिकुड़ रहा है। सारा ध्यान 'इंफ्रास्ट्रक्चर' बनाने पर है, ताकि नेता पैसे कमा सकें।"

गैर-कानूनी माइनिंग की समस्या अपनी जगह है। पर्यावरण संरक्षणवादी और कानूनी अधिकारों के लिए काम करने वाले रोहित चौधरी ने 2012 में एक याचिका दायर की थी, जिसमें काज़ीरंगा और उसके आस-पास बिना नियम-कानून चल रही पत्थर खुदाई और माइनिंग का मुद्दा उठाया गया था और 60 गैर-कानूनी पत्थर की खदानों की सूची दी गई थी। 2019 में, सुप्रीम कोर्ट ने काज़ीरंगा की दक्षिणी सीमा पर माइनिंग पर रोक दी और आदेश दिया कि 'पार्क में जानवरों के लिए चिन्हित नौ कॉरिडोर का हिस्सा बनने वाली निजी ज़मीन पर कोई नया निर्माण नहीं होगा'।

2026 में, चौधरी ने सुप्रीम कोर्ट की बनाई सेंट्रल एम्पावर्ड कमिटी में याचिका लगाई। उन्होंने 2019 के आदेश का उल्लंघन करते हुए दो वन्यजीव गलियारों में अवैध निर्माण का दावा किया। अधिकारियों का कहना है कि 'जांच' जारी है।

चौधरी ने बताया, "बड़े पैमाने पर फिर खनन चालू है।मीडिया रिपोर्ट्स से पुष्टि होती है कि झीलें सूख रही हैं और हमारे जंगल, खासकर बांस के जंगल, तेज़ी से खत्म हो रहे हैं। जानवरों का प्राकृतिक आवास अगर एक बार नष्ट हो गया, तो काज़ीरंगा के पास क्या उम्मीद बचेगी?"

इस सब के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वाले कार्यकर्ता प्रताड़ित हैं और जेल में डाले जा रहे हैं। मुखर कार्यकर्ता प्रणब डोले की रासुका के तहत गिरफ़्तारी से हड़कंप मच गया। 60 से ज़्यादा अधिकार समूहों, ट्रेड यूनियनों और नागरिक समाज के संगठनों ने इसे "बदले की भावना से भरा और मनमाना" बताते हुए उनकी रिहाई की मांग की। कई अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार और आदिवासी अधिकार संगठनों ने एक खुला पत्र (18 अगस्त 2026) लिखकर इलाके के आदिवासी समुदायों की मंज़ूरी बिना कोई भी होटल प्रोजेक्ट शुरू न करने की मांग की है।

यह पार्क अवैध शिकार, बाढ़, कब्ज़े और माइनिंग जैसी चुनौतियों से तो बचकर टिका रहा है... लेकिन क्या यह अनियंत्रित व्यावसायिक शहरीकरण के नए ख़तरे से बच पाएगा? इस शहरीकरण से वह प्राकृतिक आवास नष्ट होने का ख़तरा है, जो काज़ीरंगा को भारत के लिए एक अनमोल रत्न बनाता है। ■

> 'विधि सेंटर फॉर लीगल पॉलिसी' द्वारा 109 राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों के शुरुआती विश्लेषण से पता चला कि 60 राष्ट्रीय उद्यानों ने ईएसजेड पूरी तरह खत्म कर दिए

दायरे में संवाद, पहरे में कारोबार

ब्रिक्स सम्मेलन में जमी बर्फ पिघलने के बावजूद चीन के साथ आर्थिक निर्भरता, सीमा विवाद और विनिर्माण की पेचीदा चुनौतियां बरकरार

अजीत रानाडे

दिल्ली में अभी-अभी संपन्न हुए ब्रिक्स शिखर सम्मेलन को शायद किसी बहुत आक्रामक या ऐतिहासिक घोषणापत्र के लिए याद न रखा जाए। लेकिन केवल इसी बात पर उलझे रहना भारत के लिए इसके कूटनीतिक महत्व को नजरअंदाज करना होगा। सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या ब्रिक्स सम्मेलन वास्तव में भारत-चीन रिश्तों के बीच जमी बर्फ को पिघलाने में मददगार साबित हुआ?

भारत की कूटनीतिक उपलब्धि केवल यह नहीं थी कि उसने इस सम्मेलन का आयोजन किया-वह तो वैसे भी इस बार ब्रिक्स का अध्यक्ष था-बल्कि असल बात यह थी कि उसने उन देशों के बीच एक साझा घोषणापत्र तैयार करवाने में सफलता पाई जिनके हित आपस में अक्सर टकराते रहते हैं। अपने तमाम तनावों के बावजूद ईरान और संयुक्त अरब अमीरात एक ही मेज पर बैठ सके; चीन ने पहलगाम आतंकवादी हमले की निंदा करने वाले मसौदे पर हस्ताक्षर किए; और सदस्य देश अपने बिल्कुल अलग-अलग खेमों के बावजूद पश्चिम एशिया में शांति वार्ता पर रजामंद हो सके। भारत ने 2023 में जी-20 अध्यक्षता के दौरान भी कुछ ऐसा ही कर दिखाया था, जब यूक्रेन युद्ध पर तीखे मतभेदों के बीच एक साझा सर्वसम्मत भाषा तलाश ली गई थी।

सम्मेलन के इतर नरेन्द्र मोदी और शी जिनपिंग की द्विपक्षीय मुलाकात इस साझा बयान से कहीं अहम थी। सात वर्षों में पहली बार शी भारत की यात्रा पर आए थे। दोनों नेताओं ने व्यापारिक रिश्तों, बाजार तक पहुंच, व्यापार के संरचनात्मक असंतुलन और दोनों मुल्कों के नागरिकों के आपसी संवाद पर चर्चा की। आधिकारिक बयानों में सीमा पर शांति बनाए रखने का भी नपा-तुला जिक्र किया गया। इसे अभी से यह मान लेना के दोनों देशों में 'सुलह' हो गई, जल्दबाजी होगी, लेकिन यह आगे बढ़ने का एक बड़ा मौका जरूर है।

भारत और चीन पड़ोसी हैं, जो मिलकर समूची मानवता के एक-तिहाई से अधिक हिस्से का प्रतिनिधित्व करते हैं। भूगोल को मिटाया नहीं जा सकता। न ही उनका सीमा विवाद रातों-रात खत्म होने वाला है। 1988 में राजीव गांधी को दी गई डेंग जियापोंग की वह मशहूर सलाह आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैः यदि हमारी पीढ़ी सीमा विवाद को सुलझाने की समझदारी नहीं जुटा पा रही है, तो इसे आने वाली अधिक समझदार पीढ़ी के लिए छोड़ देना चाहिए।

इसका मतलब यह कतई नहीं कि गलवान को भुला दें, जहां 2020 में भारत के 20 जांबाज सैनिक शहीद हुए थे। सीमाओं की हर हाल में मुस्तैदी से रक्षा होनी चाहिए। लेकिन सीमा पर तनाव को पूरे द्विपक्षीय रिश्ते को बंधक बनाने की छूट नहीं दी जा सकती। दरअसल, भारत और चीन पहले से ही मुद्दों को अलग-अलग खानों में बांटकर आगे बढ़ने पर काम कर रहे हैं। बिश्केक में एससीओ शिखर सम्मेलन के दौरान उन्होंने पाकिस्तान, रूस और अन्य देशों के साथ आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में दोहरे मानकों को खारिज करने वाले साझा प्रस्ताव पर दस्तखत किए। यदि ऐसे अंतर्विरोधों को एससीओ और ब्रिक्स के बहुपक्षीय मंचों पर साधा जा सकता है, तो द्विपक्षीय स्तर पर भी ऐसा किया जा सकता है।

भारत और चीन के बीच ये अलग-अलग खाने हैंः सीमा सुरक्षा; व्यापार और निवेश; तकनीक; नदियां और उनके जल अधिकार; हिमालयी पारिस्थितिकी; जलवायु परिवर्तन; विश्व व्यापार संगठन में सुधार; परमाणु अप्रसार; विश्वविद्यालय, पर्यटन और संस्कृति; और अंतरराष्ट्रीय संघर्षों पर चयनात्मक सहयोग।

व्यावहारिकता का आर्थिक आधार ठोस और निर्विवाद है। चीन के साथ भारत का व्यापार घाटा लगभग 112 अरब डॉलर हो चुका है। इसके बावजूद हमारी निर्भरता सिर्फ सस्ते खिलौनों तक सीमित नहीं। चीन हमें जीवनरक्षक दवाओं के लिए जरूरी एपीआई (कच्चा माल), इलेक्ट्रॉनिक कलपुर्जे, भारी मशीनरी, सोलर उपकरण और दुर्लभ खनिज मुहैया कराता है। गलवान के बाद भारत ने चीनी निवेश और तकनीकी पहुंच पर सख्त पाबंदियां लगाईं। फिर भी आयात बढ़ता गया। राजनीतिक दूरी बनाने की कोशिशों से हमारी आर्थिक निर्भरता रत्ती भर कम नहीं हुई।

2019 के बैंकॉक आसियान शिखर सम्मेलन में आरसीईपी (क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी) से भारत का अचानक बाहर निकलना हमारे लिए गंभीर चेतावनी होना चाहिए। भारत ने नौ साल तक इसपर बातचीत की, लेकिन चीनी आयातों की बाढ़ के कथित डर के चलते 2019 में अचानक वार्ता से किनारा कर लिया। विडंबना यह है कि वे चीनी आयात फिर भी भारतीय बाजार में घुसते चले गए। हम आरसीईपी में दी गई छूट के तहत उन शर्तों को पंद्रह साल टाल सकते थे। इस समझौते से बाहर निकलकर भारत ने एशियाई उत्पादन नेटवर्क का अभिन्न हिस्सा बनने का मौका गंवा दिया। रिश्ते बेशक एकतरफा दिखें, लेकिन चीन को भी भारत की उतनी ही जरूरत है।

चीन के पास जबर्दस्त आर्थिक ताकत जरूर है, लेकिन उसकी अपनी कमजोरियां भी हैं। उसकी आबादी तेजी से बूढ़ी हो रही है, कामकाजी आबादी सिकुड़ रही है, रियल एस्टेट क्षेत्र संकट में है, कर्ज का भारी बोझ है, घरेलू खपत कमजोर बनी हुई है और उसकी अतिरिक्त औद्योगिक क्षमता को नए विदेशी बाजारों की सख्त दरकार है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का अनुमान है कि जनसांख्यिकी दबाव, गिरती उत्पादकता और निवेश पर घटते मुनाफे के चलते चीन की मध्यम अवधि की विकास दर धीमी रहने वाली है।

दूसरी तरफ, भारत दुनिया के सबसे बड़े और तेजी से बढ़ते बाजारों में से एक है, जिसके पास युवा श्रम बल है और यह उस चीनी पूंजी के लिए एक मुफीद ठिकाना है जो दुनिया के अन्य हिस्सों में बंदिशों का सामना कर रही है। ऐसे में सही रणनीति 'चीन को पूरी तरह बाहर रखने' की नहीं, बल्कि यह कहने की होनी चाहिएः 'अगर आप भारतीय बाजार तक पहुंच चाहते हैं, तो यहीं बनाइए, रोजगार दीजिए, कलपुर्जे यहीं से खरीदिए और भारत से ही निर्यात कीजिए।'

फोटो: जेटी इमेजेज

नई दिल्ली में ब्रिक्स सम्मेलन के दौरान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग

इसकी शुरुआत बीवाईडी के साथ भारत में फैक्ट्री लगाने की रुकी हुई बातचीत को शुरू करके क्यों नहीं की जा सकती? बीवाईडी दुनिया की अग्रणी इलेक्ट्रिक वाहन निर्माता कंपनी है। भारत में विस्तार की उसकी महत्वाकांक्षाएं गलवान के बाद निवेश पर लगी रोक की भेंट चढ़ गईं। उसे बातचीत की मेज पर वापस लाया जाए, लेकिन भारत की अपनी शर्तों पर-स्थानीय विनिर्माण, भारतीयों को रोजगार, स्थानीय सप्लायरों का विकास, डेटा की कड़ी सुरक्षा और विनिर्माण में भारतीय मूल्य-संवर्धन की अनिवार्य शर्त के साथ।

प्रेस नोट 3 (2020 श्रृंखला), जिसने चीन से आने वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर नकेल कसी थी, उसे अंधी शंका के बजाय जोखिम-आधारित जांच-पड़ताल की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। दूरसंचार नेटवर्क में चीनी हिस्सेदारी का सवाल उस निष्क्रिय चीनी पूंजी से बिल्कुल अलग है जो किसी राजमार्ग, गोदाम, जल परियोजना या सिंचाई तंत्र को वित्तीय मदद दे रही हो। यह 'दायरे में रहकर सीमित व्यवहार' का वह व्यावहारिक नीतिगत प्रस्ताव है जिसे नितिन पई, अजय शाह और इस लेखक ने सितंबर 2025 में बताया था। इसका सीधा नियम हैः प्रबंधन नियंत्रण दिए बिना पूंजी स्वीकार कीजिए, संवेदनशील चीनी तकनीक को पूरी तरह बाहर रखिए और बुनियादी ढांचे के गैर-संवेदनशील क्षेत्रों से शुरुआत कीजिए।

कुछ छोटे दरवाजे तुरंत खोले जाने चाहिए। चीनी पर्यटकों, कारोबारी प्रतिनिधियों, शिक्षाविदों और इंजीनियरों के लिए वीजा नियमों को आसान बनाया जाए। चीनी पर्यटकों के लिए बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर और नालंदा को जोड़कर एक विशेष बौद्ध सर्किट तैयार किया जाए। विश्वविद्यालयों के आपसी सहयोग को पुनर्जीवित किया जाए। सिनेमा, खेलकूद और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया जाए।

इसके साथ ही, भारत को चीन के विशाल घरेलू उपभोक्ता बाजार तक पहुंच के लिए कहीं अधिक मजबूती से अपनी बात रखनी होगी। व्यापार घाटे का समाधान केवल चीनी आयात घटाना नहीं हो सकता। असली रास्ता यह है कि भारतीय दवाएं, खाद्य उत्पाद, आईटी सेवाएं, मनोरंजन और अन्य उत्पाद बड़े पैमाने पर चीनी बाजार में जगह पाएं।

कारोबारी सुगमता रैंकिंग में निचले पायदान और पश्चिमी शैली के लोकतांत्रिक संस्थानों के अभाव के बावजूद चीन का असाधारण आर्थिक विकास इस बात की याद दिलाता है कि उसे उसकी जमीनी हकीकत के साथ समझना होगा, न कि किताबी सिद्धांतों के चश्मे से। भारत को न तो चीन की अंधी नकल करनी चाहिए और न ही उससे डरने की जरूरत है। भारत को सीखना चाहिए, मुकाबला करना चाहिए और अपनी रणनीतिक क्षमताएं गढ़नी चाहिए-विशेष रूप से एयरोस्पेस, रक्षा, सेमीकंडक्टर, अहम खनिज, फार्मास्यूटिकल्स और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में।

चीन के साथ रिश्तों में आने वाली नरमी का यह कतई मतलब नहीं होना चाहिए कि भारत अमेरिका, यूरोप, जापान या क्वाड के साथ अपने रिश्तों को कमजोर करे। भारत को ब्रिक्स, एससीओ, क्वाड, जी-20 और अन्य सभी उपयोगी अंतरराष्ट्रीय मंचों पर एक साथ सक्रिय रहना चाहिए। भारत के भविष्य के कूटनीतिक फैसले इनमें से किसी एक रिश्ते के बंधक नहीं बन सकते। इसे ही कहते हैं असली 'रणनीतिक स्वायत्तता'। अगले साल ब्रिक्स की अध्यक्षता चीन के हाथों में होगी। आने वाले बारह महीने कूटनीतिक पहल के लिहाज से बेहद महत्वपूर्ण हैं।

रिश्तों पर जमी बर्फ पिघलाने के लिए भावनात्मक दोस्ती या आंख मूंदकर किए जाने वाले भरोसे की नहीं, बल्कि पारस्परिक हितों और दूरदर्शी कूटनीतिक कल्पना की जरूरत होती है। जहां जरूरी हो, वहां अपनी सीमाओं की हिफाजत कीजिए। जहां मुकाबला लाजिमी हो, वहां डटकर मुकाबला कीजिए। जहां मुमकिन हो, सहयोग कीजिए। और इस संवाद से जो समय और अवसर मिले, उसका उपयोग खुद को आंतरिक रूप से मजबूत बनाने में कीजिए। ■

> जहां ज़रूरी हो, वहां सुरक्षा करें। जहां उचित हो, वहां प्रतिस्पर्धा करें। जहां संभव हो, वहां सहयोग करें। रिश्ते बेशक इकतरफा दिखें, लेकिन चीन को भी भारत की उतनी ही जरूरत है

अजीत रानाडे जाने-माने अर्थशास्त्री हैं;
सामार: द बिलियन प्रेस

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

राज्य 360° महाराष्ट्र

जरांगे, यूसीसी और 'फेकू' बडग्या का लापता होना

महाराष्ट्र में मराठा आरक्षण का भड़कता असंतोष, समान नागरिक संहिता की सियासत और नागपुर के ऐतिहासिक उत्सव पर सरकारी पहरे के निहितार्थ

जयदीप हर्डीकर

लगता है गणेशोत्सव के दौरान मराठा नेता मनोज जरांगे-पाटिल का मुंबई में आंदोलन छेड़ना देवेंद्र फडणवीस सरकार के लिए इतना बड़ा सियासी जोखिम था, जिसे वह उठाने की कतई स्थिति में नहीं थी।

जरांगे ने मराठा आरक्षण के सवाल पर एक बार फिर भूख हड़ताल शुरू कर दी थी। साल 2014 के बाद से यह उनका 12वां अनशन है, जिसमें वह कुल मिलाकर करीब सौ से ज्यादा दिन अनशन पर काट चुके हैं। वह मराठवाड़ा के जालना जिले में अपने पैतृक गांव अंतरवाली सराटी में अनशन कर रहे थे। जालना में दो हफ्ते गुजारने के बाद उन्होंने मुंबई की ओर कूच कर दिया, जहां ऐन त्योहारी समय वह नए सिरे से अपने आंदोलन को भड़काने की तैयारी में थे।

इस संभावित टकराव ने फडणवीस सरकार के पसीने छुड़ा दिए थे। साल के इस समय मुंबई पहले ही खचाखच भरी रहती है, और विसर्जन-जुलूसों तथा उत्सव के शोर-शराबे के बीच कानून-व्यवस्था संभालना अपने आप में बड़ा सिरदर्द होता है और इसके लिए खासी मशक्कत करनी पड़ती है। ऊपर से लौटते हुए मानसून की मार का साया अलग मंडरा रहा था। इस पर राज्य भर में भीड़ जुटाने की जरांगे की जानी-मानी ताकत ने आग में घी का काम किया। इन सबने मिलकर राज्य सरकार के हाथ-पांव फुला दिए थे।

बुधवार, 16 सितंबर की देर रात मुंबई आते हुए बीड के पास राज्य सरकार के एक दल ने जरांगे को रोककर उनसे बात की। सरकार ने उनकी ज्यादातर मांगें मान लीं और 90 दिनों के भीतर अपना वादा निभाने की बात कही है। लेकिन एक बार जब त्योहार का शोर थमेगा, तब सरकार क्या गुल खिलाएगी-इसका सिर्फ अंदाजा ही लगाया जा सकता है।

जरांगे के विरोध का मुख्य आधार राज्य सरकार का यह दावा है कि मराठों का एक बड़ा वर्ग ऐतिहासिक रूप से कुनबियों जैसी कृषक पहचान साझा करता है, जिन्हें ओबीसी समुदाय का दर्जा हासिल है। सरकार द्वारा गठित एक समिति ने कथित तौर पर कुनबी पहचान से जुड़े 58 लाख ऐतिहासिक दस्तावेज चिह्नित किए हैं, जिनमें मराठवाड़ा के आठ जिलों में निजाम कालीन 'हैदराबाद गजट' के रिकॉर्ड भी हैं। सरकार का दावा है कि वह अब तक 3,16,977 कुनबी जाति प्रमाणपत्र जारी भी कर चुकी है।

जरांगे की जिद है कि जब सरकार को दस्तावेज मिल चुके हैं, तो प्रमाणपत्र जारी करने में कैसी देरी? पेंच यहीं फंसा हैः राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज कोई ऐतिहासिक प्रविष्टि स्वतः जाति प्रमाणपत्र में तब्दील नहीं होती। हर दावे की पड़ताल होनी है, उसे आवेदक के परिवार और वंशावली से जोड़ना होता है, और प्रशासन को साबित करना होता है कि मिले 58 लाख रिकॉर्ड में से कौन लोग इसके वास्तविक पात्र हैं और यह पात्रता उनके वंशजों तक कैसे आती है। लेकिन जरांगे की मांग में इस तरह की लंबी और पेचीदा अभिलेखीय कवायद के लिए कोई जगह नहीं दिखती-उन्हें यह अधिकार आज और अभी चाहिए।

महाराष्ट्र में सत्ता में रहीं सरकारें पिछले दो दशकों से मराठा आरक्षण का कानून सम्मत रास्ता खोजने में जुटी हैं। यदि उनकी कुनबी पहचान पुख्ता हो जाती है, तो ओबीसी कोटे के तहत एक रास्ता खुलता है। लेकिन उस राह पर चलने का सीधा मतलब है अन्य ओबीसी जातियों के तीखे गुस्से को न्योता देना- जो राज्य में भाजपा का मुख्य जनाधार हैं।

मराठा आरक्षण के लिए जूझते मनोज जारांगे पाटिल

सुप्रीम कोर्ट की सेवानिवृत जज रंजना देसाई जिन्हें यूसीसी पर बनी समिति का अध्यक्ष बनाया गया है

यूसीसी की आहट

14 सितंबर को मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस ने कहा कि इस मसले पर विचार कर रही समिति द्वारा अपनी रिपोर्ट सौंपे जाने के बाद महाराष्ट्र सरकार राज्य विधानमंडल के आगामी नागपुर शीतकालीन सत्र में समान नागरिक संहिता (यूसीसी) विधेयक पेश करने का इरादा रखती है। उनका यह बयान केन्द्रीय गृहमंत्री द्वारा मुंबई में दिए गए उस बयान के ठीक एक दिन बाद आया, जिसमें उन्होंने दावा किया था कि 2029 के लोकसभा चुनावों से पहले भाजपा शासित 21 राज्यों में यूसीसी लागू हो जाएगा।

भाजपा की इस रणनीति में जो बात नई है, वह यह कि संघ परिवार के इस पुराने और बुनियादी एजेंडे को अमलीजामा पहनाने के लिए पूरे देश में एक समान केन्द्रीय कानून लाने के बजाय राज्यों के जरिये चोर दरवाजे का रास्ता चुना जा रहा है। महाराष्ट्र ने जुलाई 2026 में सुप्रीम कोर्ट की सेवानिवृत्त न्यायाधीश रंजना देसाई की अध्यक्षता में सात सदस्यीय समिति का गठन किया था। इस पैनल में बॉम्बे हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश आर.सी. चव्हाण और एस.जी. मेहरे, पूर्व मुख्य सचिव डी.के. जैन, पूर्व महाधिवक्ता वीरेंद्र सराफ, संविधान विशेषज्ञ रमेश पतंगे और शिक्षाविद सुवर्णा रावल शामिल हैं, जिन्हें अपनी सिफारिशें देने के लिए छह महीने का वक्त मिला है।

9 जुलाई के सरकारी प्रस्ताव में समिति से यूसीसी के संवैधानिक, कानूनी, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रशासनिक नतीजों की पड़ताल करने को कहा गया है। इसे उत्तराखंड और अन्य राज्यों के अनुभवों का अध्ययन करना है; शादी, तलाक, गोद लेने, विरासत और उत्तराधिकार के मामलों को देखना है; और महाराष्ट्र के लिए जरूरी कानूनी, प्रशासनिक एवं संस्थागत बदलावों की सिफारिश करनी है। समिति से उम्मीद की गई है कि वह 'विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों, महिला संगठनों, गैर-सरकारी संगठनों, विशेषज्ञों और आम नागरिकों की राय लेगी।'

कानूनी और प्रशासनिक दिग्गजों से भरे होने के बावजूद, इस समिति में उन अल्पसंख्यक धार्मिक समुदायों-मुस्लिम, ईसाई, सिख, जैन, बौद्ध या पारसी-का एक भी नुमाइंदा नहीं है जिनके पर्सनल लॉ की समीक्षा का जिम्मा उसे सौंपा गया है। यहां तक कि इसमें आदिवासियों का भी कोई प्रतिनिधि नहीं है। मुंबई में अमित शाह ने साफ कहा था कि आदिवासी समुदाय यूसीसी के दायरे से बाहर रहेंगे और उनकी परंपराओं को सुरक्षित रखा जाएगा।

उत्तराखंड में जनवरी 2025 से यूसीसी लागू है। गुजरात और मध्य प्रदेश इस कानून को अपनी विधानसभाओं से पारित कर चुके हैं, लेकिन उन्हें अभी राष्ट्रपति की मंजूरी का इंतजार है। इस दिशा में कदम बढ़ाने वाला महाराष्ट्र चौथा राज्य है। अब देखना यह है कि महाराष्ट्र राज्य-विशिष्ट कानून का मसौदा तैयार करता है या फिर किसी दूसरे राज्य के कानून की हू-ब-हू नकल करता है। जस्टिस देसाई उत्तराखंड और गुजरात की समितियों में भी शामिल रही थीं। गठन के बाद से अब तक महाराष्ट्र पैनल ने कोई सार्वजनिक जनसुनवाई नहीं की है। क्या हम उम्मीद कर सकते हैं कि सरकार इस प्रक्रिया को पारदर्शी बनाएगी-किसे बुलाया गया, क्या सुझाव मिले और क्या असहमति के स्वरों ने अंतिम सिफारिशों पर रत्ती भर भी कोई असर डाला?

मारबत उत्सव का सत्ता के सामने सच बोलने का 145 साल पुराना गौरवशाली इतिहास बरकरार

लापता 'फेकू'

नागपुर के मारबत उत्सव का सत्ता के सामने सच बोलने का 145 साल पुराना गौरवशाली इतिहास रहा है। इसे ब्रिटिश हुकूमत के दौर में जन-प्रतिरोध के एक अनूठे औजार के तौर पर शुरू किया गया था-नागरिकों का एक ऐसा सुरक्षा वाल्व जहां लोग अपने समय की बुराइयों, जुल्मों और विसंगतियों को नाम लेकर ललकारते थे, उनका उपहास उड़ाते थे। प्रतीकात्मक रूप से 'मारबत' (बुराइयों को सोखने वाली देवी) और 'बडग्या' (बुराई का प्रतीक, आमतौर पर एक पुरुष) के पुतले होते जिनमें मारबत को अगले साल के लिए सुरक्षित रख लिया जाता जबकि बडग्या के पुतले को आग के हवाले कर देते। औपनिवेशिक दौर में अगर यह विदेशी हुकूमत के खिलाफ था, तो आज महंगाई, बेरोजगारी, नागरिक बदहाली और सत्ता के सियासी अहंकार के खिलाफ है। इस उत्सव की असली ताकत इसकी बेबाकी और निडरता है। पुराने शहर की संकरी गलियों में बजते ढोल, नारों और उमड़ते हुजूम के बीच बड़े से बड़े नेता को भी नहीं बख्शा जाता। यह पर्व जनता के नब्ज की सटीक थाह लेने वाला पैमाना माना जाता है। ऐसे में अंतिम क्षणों में 'फेकू' बडग्या का रहस्यमय तरीके से गायब हो जाना, और भाजपा शासित नागपुर नगर निगम द्वारा 2 करोड़ रुपये झोंककर इस उत्सव को 'वैश्विक सांस्कृतिक आयोजन' का चोगा पहनाने की कवायद को इसकी मूल विद्रोही आत्मा पर सीधे प्रहार के रूप में देखा जा रहा है। सदियों से सत्ता को आईना दिखाने वाले किसी लोक-उत्सव को सरकारी संरक्षण की बैसाखियों पर खड़ा करना उसके बुनियादी विचार का मखौल उड़ाना है।

जहां अन्य बडग्या बेरोजगारी, पेपर लीक, स्मार्ट मीटर, नशाखोरी और नागरिक दुश्वारियों पर सीधा हमला बोल रहे थे, वहीं 'फेकू' बडग्या-जिसका इशारा किस ओर था यह किसी से छिपा नहीं है-स्थानीय भाजपा नेताओं के भारी दबाव में अंतिम पलों में हटा दिया गया, और उसकी जगह आनन-फानन में पाकिस्तानी प्रधानमंत्री शहबाज शरीफ का पुतला खड़ा कर दिया गया।

बापट का असर

14 सितंबर को जैसे ही दस दिवसीय उत्सव की रंगारंग शुरुआत हुई, महाराष्ट्र भर के दर्जनों गणेश मंडलों ने स्वेच्छा से डीजे और कानफाड़ू साउंड सिस्टम का त्याग कर नजीर पेश की।

नागपुर में प्रतिरोध का दूसरा अनूठा प्रतीक-क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद गणेश मंडल, जिसकी नींव सात दशक पहले स्वतंत्रता सेनानी गुलाब पुरी ने रखी थी और अब उनके बेटे चंद्रशेखर पुरी जिसकी अगुवाई करते हैं-उसने मारबत में हुई इस सेंसरशिप की कसर पूरी कर दी। दिखावे से कोसों दूर और तेवरों में बेहद तीखा, इस साल का यह गणेश पंडाल जंतर-मंतर पर हुए विरोध प्रदर्शनों, चीनी की कीमतों में आए उछाल और एथेनॉल विवाद, बेलगाम महंगाई एवं बेरोजगारी, और शिक्षा के अंधाधुंध निजीकरण जैसे ज्वलंत मुद्दों पर केन्द्रित है-जिनके लिए दरबारी गोदी मीडिया के पास कोई जगह नहीं है। यह पंडाल प्रधानमंत्री की जनविरोधी नीतियों को सीधे कटघरे में खड़ा करता है। ■

राज्य 360° केरला

तिरुवनंतपुरम

एक अलग तरह की सियासत?

के.ए. शाजी

सेवानिवृत्त शिक्षक के.के. सुरेन्द्रन मुख्यमंत्री वी.डी. सतीशन के पास किसी निजी अनुकंपा की गुहार लेकर नहीं पहुंचे थे। सरकार और व्यवस्था के खिलाफ 23 साल कानूनी लड़ाई लड़ने के बाद वह केवल इतना कहने गए थेः 'कृपया मेरे खिलाफ अब और कोई अपील दायर मत कीजिए।'

साल 2003 में, वायनाड के सुलतान बथरी स्थित जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान में प्राध्यापक रहे सुरेन्द्रन को मुथंगा आदिवासी आंदोलन के बाद गिरफ्तार कर लिया गया था। अपनी जमीन और प्राकृतिक संसाधनों से बेदखल आदिवासी अपने हकों के लिए आंदोलन कर रहे थे। सुरेन्द्रन ने उन्हें अपना नैतिक समर्थन दिया था। लेकिन पुलिस ने उनपर प्रदर्शनकारियों से मिलीभगत, हिंसा और तोड़फोड़ की साजिश के आरोप मढ़ दिए।

अदालत में यह आपराधिक मुकदमा टिक नहीं सका और सीबीआई जांच में वह बेदाग निकले। लेकिन इसके बाद सुरेन्द्रन की एक और लंबी कानूनी जंग शुरू हुईः हिरासत में अमानवीय यातनाओं के मुआवजे की लड़ाई। 2021 में निचली अदालत ने 5 लाख रुपये का मुआवजा तय किया, लेकिन तत्कालीन पिनाराई विजयन नीत एलडीएफ सरकार ने इस तर्क पर पैसे नहीं दिए कि मुआवजा देने से पुलिस का मनोबल गिरेगा। मार्च 2026 में अपीलीय अदालत ने ब्याज सहित मुआवजे की यह राशि बढ़ाकर 12.5 लाख रुपये कर दी और इसे जिम्मेदार पुलिस अधिकारियों की जेब से वसूलने का निर्देश दिया। एलडीएफ सरकार ने इसके खिलाफ भी ऊपरी अदालत में अपील का मन बना लिया था, लेकिन विधानसभा चुनाव के चलते प्रक्रिया अटक गई।

राज्य में यूडीएफ के सत्ता में आने के बाद दोस्तों की सलाह पर सुरेन्द्रन 9 जुलाई को सतीशन से मिले। मुख्यमंत्री ने उन्हें भरोसा दिलाया कि मुआवजा जल्द से जल्द उनके खाते में पहुंचेगा। राजनीतिक विश्लेषक दामोदर प्रसाद के अनुसार, यह घटना छोटी जरूर है, लेकिन किसी भी नीतिगत दस्तावेज से कहीं बेहतर ढंग से सतीशन की शासन शैली बयां करती है। प्रख्यात लेखक और राजनीतिक समीक्षक प्रो. एम.एन. कारासेरी कहते हैं, 'इसमें एक बड़ा राजनीतिक संदेश है। सतीशन यहां केवल राजनीतिक विरोधियों की गलतियों को नहीं सुधार रहे थे, बल्कि वह पुरानी सरकार की ऐतिहासिक भूल की जवाबदेही भी स्वीकार कर रहे थे। यह सचमुच एक अलग तरह की सियासत है।' सतीशन सरकार के सत्ता में चार महीने पूरे होने पर तिरुवनंतपुरम में यह बदलाव साफ महसूस किया जा सकता है।

जिन दिनों सतीशन राज्य की राजधानी में होते हैं, उन दिनों दोपहर 3 बजे सीएमओ ऐसी जगह बन जाती है जहां सत्ता और आम लोग एक-दूसरे से मिलते हैं

सचिवालय के दरवाजे जनता के लिए वैसे खुले हैं जैसे पिनाराई विजयन के 10 साल के शासन में कभी नहीं रहे। मुख्यमंत्री कार्यालय ने नागरिकों के लिए सतीशन से सीधे मिलने के समय तय किए हैं, जिनमें बुजुर्गों और दिव्यांगों को प्राथमिकता दी जाती है। मुख्यमंत्री दौरे पर हों, तो भी जनशिकायत प्रकोष्ठ सक्रिय रहता है।

केरल हाईकोर्ट के वकील और मध्य केरला के इरिंजालकुडा निवासी सोजन जेम्स कहते हैं, 'सचिवालय आने वाले हर व्यक्ति की समस्या का जादुई समाधान शायद सतीशन के पास न हो, लेकिन लोगों में यह भरोसा जरूर जागा है कि सरकार उनकी बात सुनने, उनका सम्मान करने और उनके साथ खड़े होने के लिए मौजूद है।'

> सतीशन द्वारा अपने काफिले और सुरक्षा तामझाम को घटाने का फैसला महज प्रशासनिक फेरबदल नहीं। सत्ता और जनता के बीच की दीवारें गिरी हैं

केरला की जनता मुख्यमंत्रियों के इर्द-गिर्द सुरक्षा के अभेद्य घेरे और आम नागरिक से सत्ता की बढ़ती दूरी की आदी हो चुकी थी। सतीशन द्वारा अपने काफिले और सुरक्षा तामझाम को घटाने का फैसला महज प्रशासनिक फेरबदल नहीं। सत्ता और जनता के बीच की दीवारें गिरी हैं। ऐसे कई वाकये सामने आए हैं जब लोग अपनी अर्जियां लेकर बढ़े और सतीशन ने गाड़ी रुकवा दी। यह दृश्य पुरानी सादगी की याद दिलाता हैः एक मुख्यमंत्री कार से उतरता है, आम लोगों की तरफ पैदल जाता है और खुद उनके हाथ से ज्ञापन लेता है।

लोक सेवा आयोग की परीक्षा पास करने के बावजूद वर्षों से नियुक्ति का इंतजार कर रहीं वी.के. शाइनी के लिए यह बदलाव बहुत मायने रखता है। वह रैंक सूची की मियाद खत्म होने के खिलाफ चल रहे धरने का हिस्सा थीं, जब उन्हें अपनी आंखों पर यकीन नहीं हुआ कि सतीशन ने अचानक अपना काफिला रुकवाया और खुद बाहर आकर प्रदर्शनकारियों से बात की।

पिनाराई विजयन के दौर में मुख्यमंत्री आवास 'क्लिफ हाउस' किसी अभेद्य किले जैसा था। वहां दाखिल होते ही सतीशन ने अधिकारियों को हिदायत दीः कोई फिजूलखर्ची या आलीशान साज-सज्जा नहीं होगी, केवल जरूरी मरम्मत कराई जाए। और क्लिफ हाउस एक 'ओपन हाउस' में तब्दील हो गया।

वरिष्ठ पत्रकार सन्नीकुट्टी अब्राहम कहते हैं, 'मुख्यमंत्री के मीडिया से संवाद के तरीके में बुनियादी बदलाव आया है। सतीशन हर कैबिनेट बैठक के बाद पत्रकारों से रूबरू होते हैं-कभी-कभार नहीं, बल्कि हर हफ्ते एक तय नियम के रूप में।' प्रेस कॉन्फ्रेंस में सतीशन कैबिनेट के फैसलों, विवादों, नियुक्तियों, खजाने की स्थिति और राजनीतिक तनातनी पर सीधे सवाल लेते हैं। वह तर्क करते हैं, बहस करते हैं, कभी-कभार असहज या नाराज भी दिखते हैं। लेकिन सवालों से भागते नहीं हैं।

सन्नीकुट्टी कहते हैं, 'इसका महत्व उस राज्य में और बढ़ जाता है जहां एक दशक से राजनीतिक संवाद पर कड़ा पहरा था। सतीशन आज भारत के अकेले मुख्यमंत्री हैं जो नियमित रूप से ऐसा कर रहे हैं। वह ई.एम.एस. नंबूदिरीपाद, के. करुणाकरन, सी. अच्युत मेनन, ई.के. नयनार, वी.एस. अच्युतानंदन, ए.के. एंटनी और ओमान चांडी के उस मॉडल को आगे बढ़ा रहे हैं, जिसे विजयन राज में बंद कर दिया गया था'

पिनाराई की छवि सत्ता के निरंकुश दबदबे वाली थी; सतीशन की कार्यशैली पारदर्शी जन-पहुंच की हामी है। एक का रवैया थाः मैं अपनी मर्जी से चलाऊंगा। दूसरे का कहना हैः आइए, मिलकर तय करें कि हमारा रास्ता क्या हो। यह फर्क विरासत में मिली नीतियों से निपटने के तरीके में साफ झलकता है। 'सिल्वरलाइन' सेमी-हाई-स्पीड रेल परियोजना बड़ा उदाहरण है। हजारों परिवारों के लिए उनके आंगन, रसोइयों के पास, कुओं के किनारे और उपजाऊ खेतों में गाड़े गए पीले सर्वे-पत्थर खौफ का पर्याय बन चुके थे। सिल्वरलाइन के खिलाफ उपजा प्रतिरोध आधुनिक केरला के सबसे जुझारू जन-आंदोलनों में से एक बन गया था। सतीशन सरकार ने इस परियोजना को रद्द किया, भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया रोक दी और उन पीले पत्थरों को हटाने के आदेश दिए। इसके साथ ही, सतीशन ने राजनीतिक विद्वेष के कारण पहले की किसी परियोजना को बंद नहीं किया। ई. श्रीधरन द्वारा प्रस्तावित नए हाई-स्पीड रेल कॉरिडोर को भी सिल्वरलाइन के विकल्प के तौर पर बिना सोचे-समझे हरी झंडी नहीं दी गई। सरकार ने रेलवे, वित्त और पर्यावरण विशेषज्ञों की चार सदस्यीय समिति गठित की ताकि परियोजना की व्यवहार्यता, नफा-नुकसान, चुनौतियों और वास्तविक उपयोगिता की स्वतंत्र पड़ताल हो सके। समिति ने प्रस्ताव को अधूरा पाया जिसके बाद सरकार ने विस्तृत अध्ययन तक परियोजना को ठंडे बस्ते में डाल दिया।

हाल ही में सतीशन अपनी पूरी कैबिनेट को लेकर एआई, जलवायु अनुकूलन, आपदा प्रबंधन और राजकोषीय सुधारों पर एक रणनीतिक कार्यशाला के लिए आईआईएम कोझिकोड पहुंचे। मंत्रियों का यूं नए सिरे से क्लासरूम का रुख करना बड़ा संदेश देता हैः सिर्फ सत्ता में होने से कोई सरकार सब कुछ नहीं जान जाती। सीखने की यह विनम्रता और शासन का यह मानवीय चेहरा आम जनता के दिलों में जगह बना रहा है।

विझिंजम की छह साल की बच्ची रुवानी का मामला लें। उसने सोशल मीडिया पर वीडियो बनाकर एक ऐसे पक्के घर की गुहार लगाई थी जिसकी छत बरसात में उसके पुराने घर की तरह न टपके। यह मार्मिक अपील सतीशन तक पहुंची; उन्होंने तुरंत बच्ची की मां से फोन पर बात की और परिवार को पक्का मकान मुहैया कराने का भरोसा दिया। या फिर सीतालक्ष्मी अम्मल का प्रसंग, जिन्हें लोग प्यार से अम्मलु अम्मा कहते हैं। अम्मलु अम्मा की मुलाकात सतीशन से 2018 की बाढ़ के दौरान हुई थी, जब वह पारावुर के विधायक के तौर पर जमीनी राहत कार्यों में जुटे थे। वर्षों बाद, जब सतीशन ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली, तो अम्मलु एक पुरानी तस्वीर सीने से लगाए तिरुवनंतपुरम के समारोह में पहुंचीं। जब उनसे पूछा गया कि सतीशन उनके क्या लगते हैं, तो उन्होंने यह नहीं कहा कि वे उनके बेटे जैसे हैं-उन्होंने कहा कि वह उनका अपना बेटा है। सतीशन ने भी भीड़ में उन्हें तुरंत पहचाना, गले लगाया और आदर सहित मंच पर साथ बैठाया।

पलक्कड़ के कारोबारी जोशी थॉमस व्यवसाय से जुड़े दस्तावेज के लिए एक साल से चक्कर काट रहे थे। उनकी परेशानी एक स्थानीय अखबार के फेसबुक पेज पर किए गए कमेंट के जरिये मुख्यमंत्री कार्यालय की नजर में आई। बताया जाता है कि अगले ही दिन सारे कागजात उनके हाथ में थे।

सतीशन सरकार को आने वाले दिनों में यह साबित करना होगा कि खुलेपन, जन-संवाद और संवेदनशीलता की उसकी यह शुरुआती पूंजी प्रशासनिक दक्षता, वित्तीय अनुशासन और बेहतर सार्वजनिक सेवाओं में भी तब्दील हो सके। कई बार बड़े बदलावों की शुरुआत छोटे कदमों से होती है और नागरिक तथा सत्ता के बीच की दूरियों को मिटा देना यकीनन ऐसा ही कदम है। ■

घर लौटने का लंबा रास्ता

तमिलनाडु में दशकों से रह रहे श्रीलंकाई तमिल शरणार्थी दोराहे पर हैं। भारत में नागरिकता मिलने से रही और वतन वापसी अनिश्चितताओं से भरी है

अगर भारत में रहने का मतलब कानूनी तौर पर अनिश्चित स्थिति में रहना है, तो श्रीलंका वापस जाना भी आसान नहीं

के.ए. शाजी

महेंद्रन मुश्किल से 11 बरस के रहे होंगे, जब उनका परिवार युद्धग्रस्त श्रीलंका से जान बचाकर भागा था। हमलावर जब 10 साल से ऊपर के लड़कों की तलाश में घर-घर दबिश दे रहे थे, तो वह और उनके भाई तमिल बहुल शहर मन्नार में अपने घर की छत और फॉल्स सीलिंग के बीच छिपकर सांस थामे बैठे रहे। परिवार किसी तरह तटीय मछुआरों के गांव पेसलाई पहुंचा, जहां उन्होंने 22 जुलाई 1990 को पाक जलडमरूमध्य पार करने से पहले दहशत भरे 15 दिन गुजारे। धनुषकोटि के तट पर पिता अपने बच्चों को कमर तक गहरे पानी से होकर सुरक्षित किनारे ले आए थे।

छत्तीस साल बाद, 47 वर्षीय महेंद्रन दक्षिणी तमिलनाडु के पुदुक्कोट्टई में रहते हैं। भारत आने के सात साल बाद ही उनके पिता का साया सिर से उठ गया। महेंद्रन ने चेन्नई के लोयोला कॉलेज से तालीम हासिल की और अब किस्तों पर फर्नीचर बेचते हैं। आज भी जब कोई उनसे उनका 'मूल वतन' पूछता है, तो उनकी जुबान पर 'सीलोन' आता है। लेकिन उनकी दोनों संतानें बिना झिझक अपना वतन तमिलनाडु बताती हैं।

यही बारीक अंतर भारत में मौजूद करीब 90,000 श्रीलंकाई तमिल शरणार्थियों के गहरे अंतर्द्वंद्व और असमंजस को बयां करता है। अगस्त 2026 में श्रीलंका सरकार ने उनकी वतन वापसी की बड़ी कानूनी अड़चन को जरूर दूर किया है। श्रीलंकाई कैबिनेट ने गृहयुद्ध के दौर में बिना वैध पासपोर्ट या अनधिकृत रास्तों से जान बचाकर भागे शरणार्थियों के लिए विशेष रियायतों को मंजूरी दी है। अब से, जिनकी श्रीलंकाई पहचान की तस्दीक हो जाएगी, वे सुरक्षा मंजूरी के बाद अधिकृत बंदरगाहों और हवाई अड्डों के जरिये बिना किसी कानूनी मुकदमे के लौट सकेंगे-उन पर 'अवैध' रास्तों से मुल्क छोड़ने का मुकदमा नहीं चलेगा।

यह रियायती व्यवस्था 1 अगस्त 2006 से पहले से लेकर 19 मई 2009 के बीच देश छोड़ने वालों पर लागू होती है-यही वह तारीख है जब लिट्टे प्रमुख वेलुपिल्लई प्रभाकरन के मारे जाने के साथ खूनी गृहयुद्ध खत्म हुआ था। श्रीलंकाई सरकार की अधिसूचना में साफ किया गया है कि गंभीर अपराधों के संदिग्धों को भले कानूनी कार्रवाई का सामना करना पड़े, लेकिन बाकी आम लोगों को अस्थायी पासपोर्ट जारी किए जाएंगे।

पिछले साल अगस्त में, भारत से वतन लौटे 75 वर्षीय एक बुजुर्ग तमिल शरणार्थी को जाफना हवाई अड्डे पर गिरफ्तार कर लिया गया था, जबकि उनके खिलाफ कोई पुराना आपराधिक रिकॉर्ड दर्ज नहीं था। यही वजह है कि अधिकतर शरणार्थियों के लिए मुकदमों के डर से मिली कानूनी छूट ने वतन वापसी के भीतर बैठे खौफ को कम नहीं किया है। तमिलनाडु के शिविरों में तीन दशक से अधिक गुजारने के बाद वे अब भी आशंकित हैं कि श्रीलंका में क्या उनका इंतजार कर रहा है। रामेश्वरम के पास मंडपम शिविर में रह रहे वी. वैथीलिंगम पूछते हैं, 'वे क्या सोचते हैं कि हम वहां जाकर गुजर-बसर कैसे करेंगे?'

भारत में 90,000 के आसपास श्रीलंकाई तमिल शरणार्थी पंजीकृत हैं, और लगभग ये सभी तमिलनाडु में हैं। 56,600 शरणार्थी सरकार संचालित 105 शिविरों में दिन काट रहे हैं, जबकि 32,800 लोग शिविरों से बाहर रह रहे हैं। यह उन 3,04,269 लोगों का एक छोटा सा हिस्सा भर है, जो 1983 के बाद से सिंहली बहुसंख्यक हिंसा द्वारा अल्पसंख्यक तमिलों को निशाना बनाए जाने के बाद शरणार्थी बनकर तमिलनाडु के तटों पर पहुंचे थे।

संख्या का यह भारी अंतर दशकों के विस्थापन और बिखराव को दर्शाता है। हजारों शरणार्थी या तो वतन लौट गए; कई किसी और देश में चले गए; और न जाने कितनों ने यहीं दम तोड़ दिया। बहुत से लोग औपचारिक शरणार्थी प्रणाली से बाहर निकलकर स्थानीय समाज में घुल-मिल गए। केन्द्र सरकार के आंकड़ों के मुताबिक, मार्च 1995 तक 99,469 लोगों को औपचारिक रूप से वापस भेजा गया था, जिसके बाद सालों कोई संगठित पुनर्वास कार्यक्रम नहीं चला। जो यहीं रहे, उनके लिए भारत अस्थायी पनाहगाह भर नहीं। यहीं उनके बाल-बच्चे हुए, उनकी शादियां हुईं और रोजी-रोटी के नए साधन खड़े हुए।

उस देश का न हो पाना जहां जिंदगी को नए सिरे से संवारा; और उस देश का होने का सलीका भूल जाना जहां से कभी जान बचाकर भागे थे। यह विरोधाभास बेहद कड़वा है। भारत स्थायी कानूनी दर्जा दिए बिना उनका घर बन चुका है। श्रीलंका उनकी राष्ट्रीयता तय करता है, लेकिन कई शरणार्थियों के लिए अब उस राष्ट्रीयता का कोई ठोस मायने नहीं। वे शरणार्थी सुरक्षा और राज्य की कल्याणकारी योजनाओं के सहारे भारत में रह सकते हैं, पढ़ सकते हैं और काम कर सकते हैं, लेकिन उन्हें एक नागरिक के बुनियादी कानूनी अधिकार हासिल नहीं हैं। उनकी पूरी जिंदगी शरणार्थी पंजीकरण और प्रशासनिक मंजूरियों की मोहताज बनकर रह गई है।

उन्होंने भारत में घर बनाए हैं, अपनी ज़िंदगी बसाई है और परिवार पाले-पोसे हैं, लेकिन उनके पास कोई कानूनी दर्जा नहीं है

दशकों की रिहाइश भी उन्हें स्वतः भारतीय नागरिकता का हकदार नहीं बनाती। नागरिकता अधिनियम के तहत, अवैध प्रवासी माने जाने वाले लोगों को पंजीकरण या स्वतः नागरिकता मिलने की प्रक्रिया से आमतौर पर वंचित रखा गया है, जब तक कि कोई विशेष कानूनी छूट न हो। इसलिए तमिलनाडु की माटी में पैदा होने के बावजूद शरणार्थी परिवारों की युवा संतानों के सामने पहचान का यह संकट कानूनी रूप से हल नहीं हो पाता।

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2019 ने इस बेगानेपन और अलगाव को और तीखा कर दिया। इस कानून ने अफगानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान से आए चुनिंदा प्रताड़ित अल्पसंख्यकों के लिए नागरिकता का रास्ता तो सुगम बनाया, लेकिन श्रीलंका के तमिलों को छोड़ दिया। नतीजा कानूनी भंवरजालः एक तमिल शरणार्थी भारत में अपनी जिंदगी के 30 से 40 कीमती साल खपा सकता है, आजीविका चला सकता है, बच्चों को पढ़ा-लिखा सकता है, लेकिन कागजों में वह हमेशा एक 'विदेशी' ही रहता है। उनके लिए यहां रहने का मतलब है स्थायी अनिश्चितता; और वतन लौटने का मतलब है एक ऐसे मुल्क में जाना जहां उनके पुराने घर, आजीविका और सामाजिक रिश्ते-नाते कब के जमींदोज हो चुके हैं।

कई के मिल्कियत के कागजात खो चुके हैं, वे संपत्ति के पुराने विवादों से घिरे हैं या उनके पास सिर छिपाने के लिए एक धुर जमीन तक नहीं बची। महेंद्रन गहरी चिंता में डूब जाते हैं: तीन दशक बाद क्या जिंदगी को शून्य से शुरू करना यहां की शरणार्थी जिंदगी से भी बदतर नहीं होगा?

जिंदगी के सबसे उत्पादक साल भारत में गुजारने के बाद श्रीलंका लौटना अनिश्चितताओं के एक नए दुष्चक्र को जन्म देगा- खासकर उन नौजवानों और बच्चों के लिए जिन्होंने तमिलनाडु के सिवा कोई समाज देखा ही नहीं। कई ने भारतीय परिवारों में शादियां कीं; कई के बच्चे भारत के उच्च संस्थानों में पढ़ रहे हैं। साल 2024 में जहां 203 शरणार्थी लौटे थे, 2025 में केवल 92 ने वापसी का रास्ता चुना-यहां रह रहे विशाल समुदाय के सामने यह आंकड़ा ऊंट के मुंह में जीरे जैसा है।

तमिलनाडु में शरणार्थियों के पुनर्वास से जुड़े मामलों की पैरवी करने वाले वकील मनुराज षणमुगसुंदरम कहते हैं, 'इसका कोई ठोस सबूत नहीं कि ताजा कानूनी संशोधन के बाद श्रीलंका लौटने की होड़ मच गई है। इसका मतलब यह नहीं कि वे वतन लौटना नहीं चाहते, बल्कि यह इस बात का पुख्ता सबूत है कि आज वतन वापसी की राह पहले से कहीं अधिक जटिल और जोखिम भरी हो चुकी है।'

गृहयुद्ध 2009 में भले खत्म हो गया हो, लेकिन उसके गहरे मनोवैज्ञानिक जख्म और खौफ आज भी हैं। लौटने वालों को अपनी पहचान साबित करनी होगी और कड़े सुरक्षा चक्रों से गुजरना होगा। जिन्होंने सरकारी फौजों और उग्रवादियों की बंदूकों के साए में जान बचाकर घर छोड़ा था, उनके लिए यह प्रक्रिया बेहद असहज और डरावनी हो सकती है। पहचान और नागरिकता के पुराने दस्तावेज नदारद हो सकते हैं। कौन से कागजात मान्य होंगे? और तब क्या होगा जब कागजात रहे ही नहीं?

श्रीलंका ने यह स्वीकार करके एक जरूरी कदम जरूर उठाया है कि युद्ध के दौरान पलायन करने वाले मजलूमों को दशकों बाद कानूनी मुकदमों में नहीं घसीटा जाना चाहिए। लेकिन यह महज पहला कदम है। इसकी पूरी जवाबदेही केवल लाचार शरणार्थियों के कंधों पर नहीं डाली जा सकती।

जनसांख्यिकी विशेषज्ञ एस. इरुदयाराजन का कहना है, 'गरिमापूर्ण वतन वापसी के लिए जमीन और मकान तक सुरक्षित पहुंच, पुख्ता और पारदर्शी दस्तावेजीकरण प्रणाली, रोजगार और आजीविका के अवसर, तथा शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की गारंटी जरूरी होगी।'

महेंद्रन आज भी बंद आंखों से 'सीलोन' के सपने देखते हैं, हालांकि वह खुले दिल से स्वीकार करते हैं कि तमिलनाडु ने उनकी औलादों को एक सुरक्षित जमीन और भविष्य दिया है। तीन दशकों की जद्दोजहद के बाद, कानूनी तौर पर वतन वापसी अब एक ठोस विकल्प जरूर है। लेकिन क्या इस विकल्प का इस्तेमाल उस मानवीय गरिमा के साथ किया जा सकेगा जिसकी ये मजलूम दरकार रखते हैं? असली और सबसे बड़ा सवाल यही है। ■

राज्य 360° पंजाब

तुष्टिकरण का राजनीतिक अंकगणित

पंजाब में आप सरकार ने 7.5 लाख कर्मचारियों और पेंशनभोगियों के बजाय 68 लाख महिलाओं को क्यों चुना

हरजिंदर

चुनाव का मौसम सरकारी कर्मचारियों के लिए अपनी समस्याओं को उठाने का सबसे मुफीद समय होता है। राजनीतिक कैलेंडर में यह वही मौका होता है जब कोई सरकार उनकी मांगों के लिए 'न' कहने का जोखिम नहीं उठा सकती। इसी सोच के साथ पंजाब में 2027 के विधानसभा चुनावों से पहले कर्मचारी यूनियनें लंबित महंगाई भत्ते (डीए) के बकाये के भुगतान की मांग को लेकर मार्च निकाल रही हैं, हड़ताल कर रही हैं, अदालतों का दरवाजा खटखटा रही हैं। लेकिन भगवंत सिंह मान सरकार का रवैया कुछ अलग ही नजर आ रहा है। उसका ध्यान 7.5 लाख कर्मचारियों और पेंशनभोगियों पर नहीं, 68 लाख महिला मतदाताओं पर है।

राज्य की कर्मचारी यूनियनें अन्य कुछ मांगों के साथ ही 18 फीसदी लंबित डीए बकाये के भुगतान, पुरानी पेंशन योजना (ओपीएस) बहाल करने की मांग कर रही हैं। यूनियनों के मुताबिक, लंबित डीए बकाया और इससे जुड़े अन्य भुगतान करीब 14,191 करोड़ रुपये हैं। राज्य सरकार ने भी इस आंकड़े को सीधे तौर पर खारिज नहीं किया है। कर्मचारियों का तर्क सीधा है कि कर संग्रह बढ़ा है, इसलिए सरकार के पास भुगतान करने की क्षमता है। इस मांग का राजनीतिक वजन भी कम नहीं है। करीब 3.5 लाख कर्मचारियों और चार लाख पेंशनभोगियों के इस आंदोलन के पीछे खड़े होने से यह संख्या इतनी बड़ी है कि चुनावी साल में सत्ता में बैठी किसी भी सरकार के लिए इसे नजरअंदाज करना आसान नहीं होगा।

यह टकराव अब अदालत तक पहुंच चुका है। पंजाब और हरियाणा हाईकोर्ट ने राज्य सरकार को बकाया डीए का शेष भुगतान 15 दिनों की तय समयसीमा में करने का निर्देश दिया। इसे मानने के बजाय मान सरकार सुप्रीम कोर्ट पहुंच गई। उसका तर्क है कि तत्काल भुगतान व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है और इससे जरूरी सार्वजनिक खर्च प्रभावित होगा।

यही तर्क पूरी कहानी को दिलचस्प बना देता है। एक तरफ सरकार वित्तीय मजबूरी का हवाला दे रही है, तो दूसरी तरफ वह पंजाब के इतिहास की सबसे महंगी कल्याणकारी योजना में खुले हाथ कर रही है।

फोटोः जेटी इमेजेज

पंजाब सरकार के पास सीधे फ़ायदा पहुंचाने वाले ट्रांसफ़र के ज़रिये महिला वोटरों को लुभाने के लिए तो पैसे हैं, लेकिन सरकारी कर्मचारियों के डीए एरियर का भुगतान न करने के लिए सिर्फ़ बहाने

बात हो रही है मुख्यमंत्री मावां धीयां सत्कार योजना यानी मां-बेटी सम्मान योजना की। इसके तहत अनुसूचित जाति के परिवारों की महिलाओं को हर महीने 1,500 रुपये और अन्य पात्र श्रेणियों की महिलाओं को 1,000 रुपये की आर्थिक सहायता देने का वादा है। इसके पैसे सीधे महिलाओं के खाते में पहुंचेंगे।

इस योजना के लिए अब तक 68 लाख से अधिक महिलाओं का पंजीकरण हो चुका है और तीन किस्तें लाभार्थियों के आधार से जुड़े बैंक खातों में सीधे भेजी जा चुकी हैं। मतदान से पहले तीन और किस्तें भेजे जाने की उम्मीद है। कुल मिलाकर इस योजना पर राज्य के खजाने से करीब 20,000 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है।

इस योजना का एक दूसरा पहलू भी है, जिस पर सवाल उठ रहे हैं। सरकार ने हर विधानसभा क्षेत्र में महिला स्वयंसेवकों का एक बड़ा नेटवर्क तैयार किया है। इन्हें 'सत्कार सखी' कहा गया है। इनका काम योजना के लिए पात्र महिलाओं का पंजीकरण करना है। हर पंजीकरण के लिए स्वयंसेवक को 200 रुपये का निश्चित भुगतान किया जाता है। हालांकि इसकी आधिकारिक पुष्टि नहीं हुई है, लेकिन यह कहा जा रहा है कि यह पंजीकरण अभियान हर विधानसभा क्षेत्र में महिला मतदाताओं का बारीक स्तर का डेटाबेस तैयार करने का जरिया भी बन रहा है। इसमें फोन नंबर जैसी जानकारियां शामिल हैं, जो चुनाव करीब आने पर बहुत उपयोगी हो सकता है।

इसकी गणित पर गौर कीजिए। एक तरफ 7.5 लाख कर्मचारियों और पेंशनभोगियों को 14,191 करोड़ रुपये के डीए बकाये का भुगतान करना है। यह एक ऐसा मतदाता समूह है जो संख्या में सीमित है और अपनी राजनीतिक निष्ठा के लिहाज से भी काफी हद तक स्थिर माना जाता है। दूसरी तरफ करीब 20,000 करोड़ रुपये की कल्याणकारी योजना है, जिसका लाभ राज्य के लगभग हर परिवार और हर विधानसभा क्षेत्र तक पहुंच रहा है और जो करीब दस गुना अधिक लोगों को प्रभावित करती है। इसके अलावा अगली किस्तें मतदान से ठीक पहले पहुंचने वाली हैं। दोनों को साथ रखकर देखने पर समझ आता है कि सरकार एक तरफ इस योजना को आगे बढ़ाने के लिए तैयार क्यों है और दूसरी तरफ डीए बकाये के तत्काल भुगतान को 'असंभव' क्यों बता रही है।

चुनाव से पहले शुरू की गई महंगी डीबीटी स्कीम और वित्तीय तंगी की दलील, आपस में कैसे मेल खाती हैं?

वित्त मंत्री हरपाल सिंह चीमा सार्वजनिक रूप से यह कहते रहे हैं कि राजस्व संग्रह में बढ़ोतरी का अर्थ यह नहीं है कि सरकार के पास अतिरिक्त नकदी उपलब्ध है। उनका कहना है कि पंजाब पर कर्ज चुकाने का भारी बोझ है और राज्य लगातार संरचनात्मक राजकोषीय घाटे से जूझ रहा है। यह सच भी है। साल का राजकोषीय घाटा करीब 39,971 करोड़ रुपये रहने का अनुमान है, जो सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) का लगभग 4.1-4.2 फीसदी है, जो लक्ष्य से काफी अधिक है।

पंजाब का बकाया सार्वजनिक कर्ज पहले ही 4.13 लाख करोड़ रुपये को पार कर चुका है और यह करीब 4.47 लाख करोड़ रुपये तक पहुंचने वाला है। इससे कर्ज और जीएसडीपी का अनुपात लगभग 45 फीसदी हो जाता है, जो बड़े भारतीय राज्यों में सबसे ज्यादा है। राज्य की राजस्व प्राप्तियों का 90 फीसदी से अधिक हिस्सा पहले ही वेतन, पेंशन, बिजली सब्सिडी और ब्याज भुगतान में चला जाता है।

यानी खजाने में दोनों के लिए पर्याप्त गुंजाइश शायद बिलकुल नहीं है। और जब सीमित वित्तीय गुंजाइश वाली किसी सरकार के सामने 7.5 लाख कर्मचारियों और पेंशनभोगियों के मुकाबले 68 लाख महिला मतदाताओं तक पहुंचने वाले भुगतान का विकल्प हो, तो मामला केवल भुगतान करने की क्षमता का नहीं, बल्कि राजनीतिक लाभ के हिसाब से प्राथमिकताएं तय करने का हो जाता है।

हालांकि सरकार का कहना है कि उसने अपने कर्मचारियों को पूरी तरह नजरअंदाज नहीं किया है। उसका कहना है कि 2021 के अंत से चरणबद्ध तरीके से डीए में 14 प्रतिशत की बढ़ोतरी की जा चुकी है और अब यह 42 फीसदी हो चुका है। इसके अलावा 4,500 करोड़ रुपये से अधिक का बकाया मासिक किस्तों के जरिये चुकाया जा चुका है। सरकारी अधिकारियों का यह भी तर्क है कि पंजाब की वेतन संरचना पहले से ही केन्द्र की तुलना में अधिक उदार है। उनके मुताबिक, 42 फीसदी डीए पाने वाला राज्य सरकार का एक क्लर्क 60 फीसदी डीए पाने वाले केन्द्र सरकार के कर्मचारी से अधिक वेतन घर ले जाता है।

पुरानी पेंशन योजना बहाल करना या डीए का पूरा बकाया चुका देना एक सीमित मतदाता समूह को संतुष्ट कर सकता है। इसके उलट मावां धीयां सत्कार योजना का विस्तार महिला मतदाताओं के ऐसे समूह तक पहुंचता है, जो करीब दस गुना बड़ा है। इसके तहत सीधे उनके बैंक खातों में नकद राशि पहुंचाई जा रही है और मतदान से पहले इसकी कई और किस्तें पहुंच जाएंगी। इसके अलावा पंजीकरण अभियान के जरिये सत्तारूढ़ दल को संभावित रूप से महिला मतदाताओं का एक नया डेटाबेस भी मिल रहा है, जो चुनाव प्रचार में बड़ी भूमिका निभाने वाला है। ■

हिमाचल के लिए संदेश: अब तो रुक जाओ?

'देवभूमि' के अंधाधुंध दोहन, अनियोजित कंक्रीट परियोजनाओं और बेलगाम पर्यटन वाली नीतियों से पेश आ रहा भीषण पर्यावरणीय संकट

अभय शुक्ला

ऑटो वॉन बिस्मार्क का मशहूर कथन है-मूर्ख अपनी गलतियों से और बुद्धिमान दूसरों की गलतियों से सीखते हैं। हिमाचल के नीति-नियंताओं ने अब तक न तो अपनी गलतियों से सबक सीखा और न उत्तराखंड और वायनाड के त्रासद अनुभवों से। नेपाल की रोंगटे खड़े कर देने वाली त्रासदी से ठोस सबक लेने का समय आ गया है। बुनियादी सबक बिल्कुल साफ है: हिमालय हमारी मनमानियों से तंग आ चुका है। अब बस कीजिए!

हिमाचल प्रदेश में 'विकास' के नाम पर खुला अंधेर मचा है। पिछले बीस सालों में अलग-अलग परियोजनाओं के नाम पर 12,000 हेक्टेयर बेशकीमती वन भूमि छीन ली गई, 174 जलविद्युत परियोजनाओं को मंजूरी दी गई या चालू किया गया, 50 लाख पेड़ काटे गए और 10 मंजिला इमारतों को खड़ा करने के लिए निर्माण नियमों को ताक पर रख दिया गया। 'शिमला विकास योजना 2041' को हरी झंडी देकर शहर के नाजुक ग्रीन बेल्ट को तबाह करने और ऐतिहासिक एवं कोर क्षेत्रों में कंक्रीट के जंगल उगाने की छूट दे दी गई। राज्य में गैर-जरूरी फोर-लेन हाईवे का संक्रामक रोग फैला दिया गया है, दरकते पहाड़ों के सीने में दर्जनों सुरंगे खोद दी गईं, और सालाना पर्यटक संख्या को मौजूदा 2 करोड़ से बढ़ाकर 5 करोड़ करने की आत्मघाती योजना पर काम चल रहा है।

हिमाचल में राजमार्गों का अंधाधुंध चार लेन में विस्तार करना मृत्यु को दावत देने से कम नहीं है। शिमला के बाहरी इलाके का एक नज़ारा

पहाड़ों की नाजुक भूगर्भीय परतों को बांधकर रखने वाले प्राकृतिक तत्व-जंगल, हिमनद, बर्फ के मैदान और नदियों का कुदरती जल-प्रवाह तंत्र-इंसान की बेलगाम हरकतों से तबाह हो रहे हैं। पर्यावरणविदों और वैज्ञानिकों की अनगिनत चेतावनियों और रिपोर्टों के बावजूद सरकारों की आंखें नहीं खुलीं, जो आगाह करते रहे हैं कि ये नाजुक पहाड़ इस स्तर के इंसानी दखल को नहीं झेल सकते।

अब हिमालय पलटवार कर रहा है, और उसकी चोट हर बार पहले से तेज होती जा रही है। महज तीन सालों (2022-2024) में आई इन मानव-निर्मित आपदाओं ने राज्य को 13,500 करोड़ रुपये का सीधा वित्तीय नुकसान पहुंचाया और 800 जिंदगियां लील लीं; व्यापार और रोजी-रोटी के अप्रत्यक्ष नुकसान की तो बात ही छोड़ दें। 2026 में अब तक 1,400 करोड़ रुपये का नुकसान हो चुका है और 200 से अधिक लोग जान गंवा चुके हैं।

हिमालय में तापमान बढ़ने की दर वैश्विक औसत से दोगुनी है। इस तपिश को भारी मशीनों, लेबर कैंपों के उत्सर्जन, बर्फीले मैदानों पर जमते काले कार्बन और ऊंचाई वाली नाजुक पारिस्थितिकी में बेधड़क घुसते वाहनों के प्रदूषण ने 'हीट आइलैंड' बनाकर कई गुना बढ़ा दिया है। हरियाली का मिटना कोढ़ में खाज का काम कर रहा है। पहाड़ों की भुरभुरी मिट्टी और चट्टानों को थामे रखने वाली पर्माफ्रॉस्ट (सदियों पुरानी बर्फ) तेजी से पिघल रही है। नदियों और जलधाराओं में अंधाधुंध मलबा उड़ेलने से उनकी पानी बहाने की कुदरती क्षमता घट गई है, जिससे बार-बार 'फ्लैश फ्लड' आ रहा है।

चेतावनियां मिलती रही हैं: 2013 में केदारनाथ, 2021 में चमोली, 2023 में सिक्किम, 2025 में धराली और अब नेपाल। हिमाचल के सिर पर मंडराते सबसे बड़े खतरों में है राज्य में हिमनद झीलों की बढ़ती तादाद और उनका फैलता दायरा। 1990 में राज्य में बड़े आकार की 107 हिमनद झीलें थीं, जिनका कुल क्षेत्रफल 5.54 वर्ग किलोमीटर था। आज 11.20 वर्ग किलोमीटर में 669 झीलें हैं। कई खतरनाक स्तर तक फैल चुकी हैं, जैसे लाहौल की घेपन झील, जिसका आकार छह गुना बढ़कर 100 हेक्टेयर हो चुका है। राज्य की सभी प्रमुख नदियां इन झीलों के ऊपर हिमनदों से निकलती हैं इन नदियों पर बनी जलविद्युत परियोजनाएं झीलों के फटने से आने वाली बाढ़ के मुहाने पर हैं। इन परियोजनाओं को होने वाला कोई भी नुकसान नीचे घाटियों और कस्बों में लाखों लोगों के अस्तित्व को मिटा देगा, जैसा कि नेपाल में हुआ।

> हिमाचल सबसे ज़्यादा भूकंप-संवेदनशील श्रेणी में आता है और यहां भूस्खलन की आशंका वाले 20,000 हॉटस्पॉट हैं

हिमाचल प्राकृतिक रूप से भी अन्य गंभीर जोखिमों के साए में जीता है: पूरा राज्य भूकंप के सबसे संवेदनशील जोन (जोन 6) में आता है; यहां 20,000 से अधिक भूस्खलन-संवेदनशील हॉटस्पॉट हैं; और जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम के चरम मिजाज की घटनाओं में कुछ ही सालों में 40 फीसद की बढ़ोतरी हुई है।

यह वक्त है कड़े और निर्णायक फैसले, तथा उस विकास मॉडल में आमूलचूल बदलाव का जिसे राज्य वर्षों से आंख मूंदकर ढोता रहा है। सरकार को इन बिंदुओं पर अमल करना चाहिए:

- नई जलविद्युत परियोजनाओं पर रोक: जिन परियोजनाओं पर निर्माण शुरू नहीं हुआ है, उनपर रोक लगे। लाहौल-स्पीति में अधिक ऊंचाई पर स्थित चिनाब और चंद्रभागा बेसिन तथा किन्नौर एवं पांगी जैसे दुर्गम क्षेत्रों में स्वीकृत या प्रस्तावित परियोजनाओं को रद्द किया जाए।
- 2010 की रिपोर्ट लागू हो: तत्कालीन अतिरिक्त मुख्य सचिव (वन) द्वारा तैयार जलविद्युत परियोजनाओं के पर्यावरणीय प्रभाव संबंधी 2010 की उस रिपोर्ट को लागू किया जाए जिसे हाईकोर्ट ने स्वीकार किया था, लेकिन तत्कालीन सरकार ने उसका विरोध किया और बाद की सरकारों ने ठंडे बस्ते में डाल दिया। उसकी मुख्य सिफारिशों पर गंभीरता से विचार हो: अधिक ऊंचाई वाले, अल्पाइन, ग्लेशियर और वन जलग्रहण क्षेत्रों में जलविद्युत परियोजनाओं पर पूर्ण रोक; दो परियोजनाओं के बीच 5 किलोमीटर की दूरी; नदियों का न्यूनतम सतत प्रवाह सुनिश्चित हो; किसी भी नदी पर परियोजना मंजूर करने से पहले अलग-अलग परियोजनाओं की जगह पूरे नदी बेसिन के लिए व्यापक पर्यावरण प्रभाव आकलन, पर्यावरण प्रबंधन योजना और जलग्रहण क्षेत्र उपचार योजनाएं बनें। इनपर खरी न उतरने वाली परियोजनाएं तत्काल बंद हों।
- पीर पंजाल सुरंग परियोजना का विरोध हो: लाहौल में चंद्रभागा के पानी को कुल्लू की ब्यास नदी में मोड़ने के लिए पीर पंजाल पर्वतमाला के नीचे 8.7 किलोमीटर लंबी सुरंग बनाने के केंद्र के आत्मघाती प्रस्ताव का कड़ा विरोध हो। यह परियोजना हिमालय का सीना चीरकर महाविनाश को न्योतेगी। तीन जिलों की भूगर्भीय स्थिरता को हिला देगी; करोड़ों टन मलबा पैदा करेगी जो नदियों, जलधाराओं और प्राकृतिक जल निकासी को अवरुद्ध करेगा; भूमिगत जल स्रोतों को नष्ट करेगा और सैकड़ों पेयजल योजनाओं को सुखा देगा। ब्यास में अतिरिक्त पानी झोंकने से उस नदी की विध्वंसक क्षमता भड़क जाएगी, जो हर साल कुल्लू में प्रलय बरपाती है।
- पर्यटन के बेतुके लक्ष्यों पर लगाम: हर साल पर्यटकों की संख्या 5 करोड़ पहुंचाने के पागलपन भरे लक्ष्य पर पुनर्विचार जरूरी है। राज्य का नाजुक पर्यावरण यह बोझ नहीं सह सकता। इसके लिए जिस बुनियादी ढांचे-सड़क, होटल, पानी की खपत, सीवरेज और कचरा निस्तारण-की जरूरत पड़ेगी, वह राज्य की प्राकृतिक संपदा और सांस्कृतिक पहचान को लील जाएगा। भूटान मॉडल से सीखते हुए पर्यटकों की संख्या सीमित की जाए।
- संवेदनशील इलाकों में कंक्रीट निर्माण रुके: बड़े शहरों के बाहरी हिस्सों और ग्रामीण अंचलों में पर्यटन, रियल एस्टेट तथा व्यावसायिक निर्माणों पर फौरन रोक लगे। शहरों को अंधाधुंध कंक्रीट निर्माण ने पहले ही बर्बाद कर रखा है, और अब बाहरी पूंजीपति ग्रामीण क्षेत्रों को उजाड़ने पर आमादा हैं-पहाड़ काटे जा रहे हैं, पेड़ गिराए जा रहे हैं, जंगलों-नदियों को कचरे व सीवेज से पाट दिया गया है, ध्वनि व प्रकाश प्रदूषण फैलाया जा रहा है। कसौली, सोलन, शिमला, मनाली, पालमपुर और धर्मशाला से सटे इलाके पर्यावरण के इस विनाश की गवाही दे रहे हैं। गांवों को भी कंक्रीट के मलबा बनने से बचाना होगा।
- फोर-लेन चौड़ीकरण रुके: पहाड़ों को छलनी करने वाली फोर-लेन सड़कों के सिलसिले को बंद किया जाए, जिससे केवल नेताओं, ठेकेदारों और भ्रष्ट नौकरशाहों की जेबें भरती हैं। ये रास्ते के समूचे इलाके की भूगर्भीय बनावट को तोड़-मरोड़ देते हैं, पहाड़ी ढलानों को अस्थिर करते हैं, लोगों की संपत्तियां और आशियाने छीनते हैं, स्थानीय आजीविका उजाड़ते हैं और शांत वादियों में धुआं उगलते वाहनों का रेला झोंकते हैं। परवाणू-शिमला और कीरतपुर-मनाली हाईवे गवाह हैं। एक दशक बाद भी दोनों 'निर्माणाधीन' और आपदा-ग्रस्त बनी हैं।

फैसले की घड़ी आ चुकी है। हिमालय ने सदियों तक हमारे अहंकार और मनमानियों को बर्दाश्त किया, लेकिन अब उसके सब्र का पैमाना छलक चुका है। उसकी चेतावनियां हर गुजरते साल के साथ कहीं भयानक तरीके से सामने आ रही हैं। हम हिमाचल को 'देवभूमि' कहते हैं, लेकिन वोटों और अंधाधुंध मुनाफे की हवस में इसे नोचते-खसोटते हैं। यह पाखंड रुकना होगा। सुप्रीम कोर्ट ने कुछ महीने पहले राज्य सरकार को चेताया था कि पर्यावरण के प्रति संजीदा हो जाइए, वरना यह राज्य भारत के नक्शे से गायब हो जाएगा।

हम फ्रांसीसी खगोलभौतिकीविद् और पर्यावरणविद् ह्यूबर्ट रीव्स के उन तीखे शब्दों को सच साबित कर रहे हैं: 'इंसान सबसे विक्षिप्त प्रजाति है। अनदेखे ईश्वर को पूजता है और साक्षात प्रकृति को नष्ट करता है। इस नासमझी से पूरी तरह बेखबर कि जिस प्रकृति का वह संहार कर रहा है, वही वह ईश्वर है जिसकी वह आराधना का ढोंग करता है।'

कुदरत का सम्मान कीजिए। प्रकृति की हिफाजत ही ईश्वर की सच्ची इबादत है। ■

अभय शुक्ला सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं

बंगाल सीख रहा है पूजा करने का 'सही' तरीका

चन्द्रिल भट्टाचार्य

शेर को तो बदलना ही पड़ेगा। ऐसा कैसे हो सकता है कि दुर्गा एक खूंखार मांसाहारी जानवर पर सवार हों और भक्तों से कहा जाए कि वे सख्त शाकाहारी बने रहें? और मां दुर्गा जैसी पाक देवी ऐसे जानवर की सवारी ही क्यों करें जो मांस खाता हो? वह किसी कद्दू या बैंगन पर क्यों न बैठें? हां, कुछ स्तुतियों में फेरबदल ज़रूर करना पड़ेगा, लेकिन संस्कृत समझता ही कौन है? किसी मूली की तारीफ़ अगर भारी-भरकम श्लोक में कर दी जाए, छंद कुछ टेढ़ा ही क्यों न हो, तो शिकायत कौन करेगा?

शुरू में देवी नाराज़ ज़रूर होंगी। उन्हें ऐसे वाहन की आदत नहीं जो उनके इशारे पर आगे ही ना बढ़े। लेकिन ऊंचे नैतिक मानदंडों के आगे तो उन्हें भी सीस नमाना होगा। और अगर वह रूठ ही जाएं, तो किसी उधमी गैंडे के बारे में क्या खयाल है? या फिर किसी विराट मैमथ के बारे में? गणेश को तो यह कतई पसंद नहीं आएगा और देव-मंडली की पूरी कोरियोग्राफी बिगड़ जाएगी।

लेकिन दुर्गा को शायद ऐसा कामकाजी शाकाहारी वाहन मिल जाए जिस पर वह भरोसा कर सकें। जो आक्रामक भी हो और शाही-मिज़ाज भी। जो अपनी सूंड में महिषासुर को जकड़ ले, उसे उठाकर पटक दे, पैरों तले रौंद दे और अपने दांत उस दुष्ट असुर की छाती में उतार दे। अहा, क्या शानदार दृश्य होगा! और वैसे भी, क्या अब उस पुराने वाहन को बदल देने का वक्त नहीं आ गया है? बात पहुंचती है इन जिद्दी बंगालियों तक।

बंगाली बड़ी अजीब कौम हैं। तन और मन दोनों से निहायत आलसी, खासकर मन से। उनके दिमाग में इस सोच की कोई जगह नहीं कि वक्त के साथ हर चीज़ बदलनी चाहिए—बंगालियत भी। त्योहार क्यों उसी घिसे-पिटे ढंग से मनाए जाएं? उन्हें यह क्यों नहीं दिखाई देता कि उनकी भक्ति आत्ममंथन से कोसों दूर है? उन्हीं लोगों ने एक नई पार्टी को चुना है, और जब यह पार्टी पूरे जोश से एक नए बंगाल के सृजन में जुटी है, तो इनका जी मिचला रहा। कितनी कुंद और कृतघ्न सोच है!

अगर किसी नस्ल को ऐसा लगे कि उनकी पहचान शुद्ध मांसाहारी होने पर टिकी है, तो उनपर लगाम कसनी होगी और ज़रूरत पड़े तो 'जीन-एडिटिंग' के बारे में भी सोचा जा सकता है। कितने लोग बंगालियों के तौर-तरीकों को सुधारने में लगे हैं — गालियां देकर, ज्ञान बघारकर, फरमान सुनाकर, ट्रोल करके लेकिन बंगाली हैं कि कंधे उचकाते हैं और उन्हीं पुराने मंत्रों का जाप करते रहते हैं — 'खाने की आज़ादी', 'सोच की आज़ादी', 'आज़ादी की आज़ादी', वग़ैरह वग़ैरह! लेकिन किसी नैतिक नागरिक को वही राय ज़ाहिर करनी चाहिए जिस पर सरकार की मुहर हो। आज़ादी बस इतनी।

> बंगाली लोगों को यह समझ लेना चाहिए कि हर चीज़ बदलनी चाहिए – यहां तक कि उनके जीवन जीने के स्थापित तरीके भी

याद रखिए, अब आप 'डबल इंजन' से धन्य हैं, इसलिए ज़्यादा अलहदा होने का गुमान ना करें।

अगर आप भारतीय हैं, और अगर बहुसंख्यक भारतीय पूजा-पाठ के दिनों में शाकाहारी खाना खाते हैं, तो आपकी हिम्मत कैसे हुई एग-चिकन रोल चबाने की? इससे प्रार्थना दूषित होती है, चढ़ावा बेकार जाता है और मरे हुए जानवरों का सामूहिक श्राप जीडीपी को रसातल में धकेल देता है। विश्व हिन्दू परिषद तो इतनी उदार है कि वह पूजा के दिनों में 'नॉन-वेज' पर पूरी पाबंदी की मांग भी नहीं कर रही। वह बस इतना चाहती है कि पूजा-पंडालों के आस-पास की जगह तले/उबले/कच्चे मांस-मछली के दर्शन से दूषित न हो। नियम स्पष्ट है: पूजा पंडाल के 200 मीटर के अंदर 'तंदूरी प्रॉन' नहीं बिकेगा। अब यह अलग बात है कि खाने के स्टॉल लगाने वालों को पहले यह तय करना होगा कि वे किस पंडाल से 200 मीटर की दूरी बनाएं जब तीन या अधिक पंडाल एक-दूसरे से 200 मीटर से कम दूरी पर हों।

तो कौन डिगे? पंडाल, दुकानें या फरमान? और अगर खाने का स्टॉल उचित दूरी पर हो, लेकिन रसीले कबाबों का मज़ा लेता कोई ग्राहक खाते-खाते पंडाल या देवी के करीब पहुंच जाए तो? जवाब आसान है: मत खाइए, खाने के बारे में सोचिए भी मत। आखिर यह भक्ति, आत्मशुद्धि का समय है। बेहतर होगा कि देवी के सामने देशभक्ति से भरी अर्जियां लगाइए—भारत चीन को पीछे छोड़ दे, या ट्रंप का दिल जीत ले, इत्यादि। अब वक्त आ गया है कि बंगाली दुर्गा पूजा को स्वाद-लोभ से मुक्ति और निजी लालसाओं से तौबा करने का मौका समझे। मगर किसी बंगाली से यह कहकर तो देखिए—लगभग तय है कि आपको पलट कर मुंह-भर 'मैं क्या खाऊं/पहनूं/सोचूं, मेरी मर्ज़ी' का ज्ञान ही मिले।

*

फोटो: गेटी इमेजेज़

अब दुर्गा के लिए भी अपना 'वाहन' बदलने का समय आ गया है – उन्हें भी बेहतर नैतिक मूल्यों के आगे झुकना ही होगा

पंडाल की सजावट में आख़िर 'थीम' की क्या ज़रूरत? पूजा में कल्पना की उड़ान कब से ज़रूरी हो गई? पूजा में 'थीम' की कल्पना यानी सोचना—लेकिन इतना आडंबर क्यों? पूजा में सादगी से सिर झुकाना काफ़ी नहीं? कल्पना, व्याख्या, विश्लेषण को आध्यात्मिक समर्पण के बीच आने की क्या ज़रूरत?

क्यों न इस साल 'श्वेत दुर्गा पूजा' मनाई जाए—रंगों की मादकता से बिलकुल अछूती? सारे पंडाल सफ़ेद हों, मूर्तियां और रोशनी भी सफ़ेद, और इनकी संगत करती निर्मल, प्रशांत बांसुरी जिससे पूजा की पवित्रता का एहसास हो। लेकिन बंगाली फिर भी बड़बड़ाएंगे, एक-दूसरे से होड़ लगाएंगे। वे पूजा को अपनी प्रतिभा दिखाने का मंच समझते हैं। वे समसामयिक घटनाओं पर अपनी बात भी पूजा की कला में पिरोना चाहते हैं, श्रद्धा की मर्यादाओं से बेपरवाह। इनका कुछ नहीं हो सकता!

तो सीधे-सीधे क्यों न कह दें कि बंगाल में दुर्गा पूजा दरअसल धार्मिक त्योहार ही नहीं। बल्कि यह कई दिनों तक चलने वाली एक पिकनिक है, एक ऐसी लंबी छुट्टी जब लोग अपनी परेशानियां भूल कर यारों-दोस्तों से मिलने, नए कपड़ों में सजने-सवरनें, घूमने, घर से बाहर खाने और बेमतलब अड्डा का आनंद लेना चाहते हैं।

दुर्गा पूजा रचनात्मक ऊर्जा से धड़कती एक विराट कला-प्रदर्शनी भी है, पांच दिनों का कार्निवल। आनंद का महापर्व। यही समस्या है! पूजा का आनंद से क्या लेना-देना? यह खयाल ही बेहूदा है। और जहां तक इस गुमान का सवाल है कि यह कला दिखाने का मंच है, तो कला के लिए म्यूज़ियम और गैलरियां हैं। इससे ज्यादा अध्यात्म-विरोधी और क्या हो सकता है? ध्यान भटकाने वाली उस सारी 'कला' को रगड़-रगड़ कर मिटा देना चाहिए, ताकि पूजा वह बन सके जो उचित है—सादी, साफ-सुथरी, आध्यात्मिक।

इस जिद्दी बंगाली को समझना होगा कि पूजा 'मैं' को मिटाने का नाम है, भोग-विलास का नहीं। पश्चिम बंगाल के सबसे बड़े त्योहार की परिभाषा को अब सख्ती से बदलने की ज़रूरत है। बंगालियों को गंभीरता से सोचना चाहिए: आखिर पूजा है क्या? विनम्र भाव से धन-दौलत की कामना ठीक है। या अपने दुश्मनों की बेइज्जती की कामना भी। लेकिन लहजा गंभीर होना चाहिए—किसी चुलबुले खरगोश की तरह उछलते-फुदकते हुए नहीं!

पूजा की असली भावना क्या है? वह मनोदशा जिसमें आप भक्ति और सादगी के सामंजस्य को समझें; जब आपके हृदय में सोना खरीदने, विदेश घूमने जैसे प्रलोभनों का विकार न हो। उन बंगालियों को क्या सजा हो जिन्होंने इस प्रत्यक्ष सच्चाई को न सिर्फ नज़रअंदाज़ किया बल्कि उसका मज़ाक भी उड़ाया? त्योहार पर पाबंदी लगा दीजिए। कर्फ़्यू लगा दीजिए, या लॉकडाउन भी, और दुर्गा पूजा के उन पांच दिनों के लिए सबको घर में बंद रखिए। देवी सर्वज्ञ हैं, जानती हैं कि बंगालियों को मंथन के लिए वक्त और एकांत की ज़रूरत है। खाली समय में वे संपूर्ण वंदे मातरम् को भी रट सकते हैं। ■

चन्द्रिल भट्टाचार्य कोलकाता में रहने वाले गीतकार, कवि, निबंधकार और फिल्म निर्माता हैं

योगी राज में कानून व्यवस्था...खोजते रह जाओगे

कृष्ण प्रताप सिंह

लोकतांत्रिक न्याय प्रणाली को मुंह चिढ़ाने वाला अनुत्तरदायी 'बुलडोजर राज' बताता है कि उत्तर प्रदेश में कानून व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं बची है

उत्तर प्रदेश में 2017 में भारतीय जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद से ही उसके मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने अपराधियों पर अंकुश लगाने के नाम पर लोकतांत्रिक न्याय प्रणाली को मुंह चिढ़ाने वाला जो अनुत्तरदायी 'ठोंक दो' और निरंकुश 'बुलडोजर राज' चला रखा है, उसकी परिणति एकमात्र इसी रूप में सामने आ सकती थी, जैसी इन दिनों आ रही है।

अपराधियों को जेल या जहन्नुम भेजकर जंगलराज खत्म करने की बहुप्रचारित डींग के विपरीत नौ से ज्यादा सालों से चले आ रहे 'ठोंक दो' अभियान से प्रदेश के आम लोगों का जान-माल पहले से किंचित भी ज्यादा सुरक्षित हुआ होता तो उसकी थोड़ी-बहुत 'सार्थकता' मान ली जाती। लेकिन इसके सर्वथा विपरीत उसके चलते सत्ता तंत्र की चेतनाएं इतनी दूषित हो गई हैं कि कैबिनेट मंत्री तक, अपनी पर आ जाए, तो धरना देकर 'एनकाउंटर' और 'बुलडोजर ऐक्शन' की मांग करने लगे हैं। जैसे ऐसा करना उनके द्वारा ली गई संविधान की शपथ को अतिरिक्त सम्मान प्रदान करता हो! सच तो यह है कि इसके उलट मध्यकालीन मूल्यों और नैतिकताओं में उनका विश्वास संदेह के सारे दायरों से बाहर हुआ जा रहा है।

गोंडा जिले के परसपुर थाना क्षेत्र के शाहपुर धनोवा इलाके में निषाद समाज के राजनीतिक कार्यकर्ता विनोद साहनी द्वारा की गई एक सोशल मीडिया पोस्ट को लेकर उनकी नृशंसतापूर्वक हत्या कर दी गई। पुलिस से नाराज मत्स्य पालन विभाग के कैबिनेट मंत्री और निषाद पार्टी के प्रमुख संजय निषाद ने उसी सरकार के खिलाफ, जिसका वह हिस्सा हैं, पहले लखनऊ में किंग जार्ज मेडिकल कालेज के पोस्टमार्टम हाउस में धरना दिया, फिर गोंडा में भी। फिर उन्होंने हत्यारों के एन्काउन्टर और संपत्तियों पर बुलडोजर ऐक्शन की भी मांग कर डाली। उनकी यह मांग यह साफ करने के लिए पर्याप्त थी कि संविधान और कानून के राज में उनका कितना (अ)विश्वास है। आजाद समाज पार्टी (कांशीराम) के अध्यक्ष और सांसद चंद्रशेखर आजाद ने तो यह मांग तक कर डाली कि साहनी की हत्या की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए संजय निषाद मंत्री पद से इस्तीफा दे दें।

सबसे बड़ा सच यह है कि मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ द्वारा कानून के राज के प्रति कतई कोई सम्मान न प्रदर्शित करने और 'ठोंक दो' जैसे 'अभियानों' में समूचे तंत्र के दुरुपयोग से प्रदेश के पुलिस और प्रशासनिक अधिकारी इतने डिमारलाइज हो गए हैं कि उनके लिए ठीक से नौकरी कर पाना तक दूभर हो गया है। उनकी मुश्किल यह है कि सरकार का रवैया कानून के शासन को प्रशासनिक बाधा मानने वाला है, जो न्यायिक कसौटी पर कहीं टिकता नहीं और उसकी जिम्मेदारी अंततः अधिकारियों को ही 'भुगतनी' पड़ती है।

मिसाल के तौर पर पिछले दिनों इलाहाबाद हाईकोर्ट ने अपनी एक टिप्पणी में अधिकारियों को यह तक सुना दिया कि नौकरशाही और पुलिस का यही रवैया रहा, तो प्रदेश ऐसे 'ऑरवेलियन डिस्टोपिया' (यानी दमनकारी और क्रूर राज्य) में बदल जाएगा, जिसमें नागरिकों की स्वतंत्रता पूरी तरह खत्म हो जाएगी।

दिल्ली विश्वविद्यालय की 25 वर्षीय छात्रा और एक्टिविस्ट आकृति चौधरी के विरुद्ध पुलिस द्वारा ढोंग के तौर पर जारी कानूनी नोटिसों और मनगढ़ंत कहानियों की बिना पर लगाए गए राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (एनएसए) को रद्द करते हुए कोर्ट ने कहा कि पुलिस और प्रशासनिक अधिकारियों को याद रखना चाहिए कि उनका कर्तव्य भारत के संविधान के प्रति निष्ठा रखना है, किसी राजनीतिक सत्ता या आका के प्रति नहीं। नोएडा में मजदूर आंदोलन से जुड़े इस मामले में कोर्ट ने यह भी कहा कि गौतमबुद्धनगर (नोएडा) की तत्कालीन जिलाधिकारी मेधा रूपम ने बिना किसी ठोस सबूत के, सिर्फ पुलिस की रिपोर्ट पर आंखें मूंदकर आकृति पर एनएसए लगा दिया ताकि उससे डरकर दूसरे लोग आवाज उठाने की हिम्मत न करें।

कोर्ट ने मेधा रूपम की निंदा करते हुए उनके और संबंधित दोषी पुलिस अधिकारियों के वेतन से कटौती करके आकृति को पांच लाख रुपयों का मुआवजा देने और उनकी 'गंभीर लापरवाही' को उनके सर्विस रिकॉर्ड में 'डिस्प्लेज़र' (नाखुशी) के रूप में दर्ज करने का आदेश भी दिया। लेकिन पता चला है कि प्रदेश सरकार ने इस आदेश को मानने के बजाय उसके विरुद्ध अपील करने का फैसला किया है।

इसी हाईकोर्ट द्वारा पिछले दो वर्षों के आदेशों के विश्लेषण से उजागर हुआ है कि प्रदेश में पुलिस और प्रशासन ने एनएसए एवं गुंडा ऐक्ट लगाने का एक ढर्रा बना लिया है, जिसमें जिलाधिकारियों के पास पहले से टाइप या छपे-छपाए फॉर्मेट होते हैं और उनमें बिना सोचे-विचारे संबंधित व्यक्ति का नाम भरकर उस पर एनएसए लगाने का आदेश जारी कर दिया जाता है। गत मई में संभल में एक मामले में वहां के जिलाधिकारी ने घर की चारदीवारी के भीतर गोकशी के आरोप पर भी अभियुक्त पर एनएसए लगा दिया था, जिसे कोर्ट ने यह कहते हुए रद्द कर दिया कि उससे सार्वजनिक व्यवस्था को कोई खतरा नहीं था।

> दावा था कि महिलाएं गहने पहनकर रात के 12 बजे बिना डर के सड़कों पर घूम सकती हैं। भुक्तभोगियों के अनुसार, अब उत्तर प्रदेश में ऐसा 'रामराज्य' है कि वे दिन में भी सुरक्षित नहीं हैं

हद तो तब हो गई जब सुप्रीम कोर्ट के दिल्ली में जंतर-मंतर पर हुए काकरोच जनता पार्टी के आंदोलन में शामिल छात्रों के खिलाफ किसी भी तरह की दंडात्मक या दमनकारी कार्रवाई न करने के आदेश के बावजूद गौतमबुद्धनगर पुलिस कमिश्नरेट में एसीपी और एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट रवि शंकर मिश्रा ने गौतम बुद्ध यूनिवर्सिटी के कानून के छात्र अक्षत त्रिपाठी कर कार्रवाई कर दी। उसे नोटिस जारी कर उस पर 'सरकार विरोधी भड़काऊ बातें' करने का आरोप लगाते हुए 5 लाख रुपये का पर्सनल बॉन्ड भरने का आदेश दे डाला। मामला सुप्रीम कोर्ट के संज्ञान में आया, तो उसने पूछा कि मजिस्ट्रेट की यह मजाल कैसे हुई कि वह उसके आदेश का उल्लंघन करे? इसके बाद रविशंकर मिश्रा और सम्बंधित पुलिस सब-इंस्पेक्टर शिवा पांडे को निलंबित किया गया।

गत वर्ष अप्रैल में प्रतापगढ़ जिले के कंधई थाने के प्रभारी गुलाब सिंह सोनकर ने सर्वोच्च न्यायालय की मनाही के बावजूद एक याची को गिरफ्तार कर उससे मारपीट तक कर डाली थी। कहा था कि 'मैं किसी कोर्ट का आदेश नहीं मानूंगा और तुम्हारा सारा हाईकोर्ट-सुप्रीम कोर्ट निकाल दूंगा।' याची के अनुसार न्यायालय के 28 मार्च 2025 के सुरक्षा आदेश के बावजूद थाना प्रभारी ने 23 अप्रैल 2025 को उसे उसके काम की जगह से घसीटा, गिरफ्तार किया और पीटा।

गत जून में इलाहाबाद हाईकोर्ट को एक मामले में कहना पड़ा था कि पुलिस अधिकारी राजनीतिक आकाओं को खुश करने के लिए संविधान की अवहेलना करते हैं। कुछ ही दिनों पहले कोर्ट को देवरिया जिले के पुलिस अधीक्षक और एक थानाप्रभारी को अवैध हिरासत के एक मामले में 'झूठों का झुंड' कहा था और पीड़ितों को थाना प्रभारी के वेतन से मुआवजा देने का निर्देश देना पड़ा था। कोर्ट ने पुलिस की "हाफ-एनकाउंटर" की कहानियों पर भी सवाल उठाए।

प्रदेश के लोग याद दिलाते हैं कि 2022 के विधानसभा चुनाव में प्रचार के दौरान केन्द्रीय गृहमंत्री अमित शाह ने दावा किया था कि योगी ने प्रदेश में ऐसा रामराज्य ला दिया है कि 16 साल की युवती भी गहने पहनकर रात के 12 बजे बिना डर के सड़कों पर घूम सकती है, लेकिन भुक्तभोगियों के अनुसार, अब प्रदेश में ऐसा 'रामराज्य' है कि युवतियां दिन में भी सुरक्षित नहीं हैं।

गत बारह सितंबर को लखनऊ में भाजपा के प्रदेश मुख्यालय में मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ द्वारा 'सेवा संकल्प अभियान' को लेकर बुलाई गई प्रेस कॉन्फ्रेंस में सवाल पूछने वाली स्वतंत्र पत्रकार दिव्या श्रीवास्तव के साथ हुई बदसलूकी भी इसकी एक मिसाल है। दिव्या का 'कुसूर' बस इतना था कि मुख्यमंत्री पत्रकारों के सवाल लिए बिना जाने लगे, तो उसने तेज आवाज में इसका विरोध किया और सवाल पूछा। भाजपा समर्थकों और नेताओं द्वारा उसको घेरकर अपशब्द कहे गए और दुर्व्यवहार किया गया।

एक मीडिया रिपोर्ट के अनुसार, उत्तर प्रदेश में 9 वर्षों से ज्यादा के योगी राज में पुलिस और अपराधियों के बीच 17,000 से अधिक 'एनकाउंटर' हुए हैं। इनमें 289 कुख्यात अपराधियों को मारा, हजारों को घायल और 34,000 से अधिक को गिरफ्तार किया गया है। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने इन एनकाउंटरों की कार्यप्रणाली, पैरों में गोली मारने के पैटर्न और स्वतंत्र जांच को लेकर पुलिस के दावों पर कई बार सवाल उठाए हैं, फिर भी इन पर अंकुश नहीं लग पाया है। राजनीतिक विश्लेषक डॉ. रामबहादुर वर्मा कहते हैं कि इन एनकाउंटरों का सच समझने के लिए जानना जरूरी है कि प्रदेश की जो पुलिस इन दिनों 'मुठभेड़ बहादुर' बनी हुई है, उसका आज़ादी के पहले से ही एक खास तरह का सामंती और अभिजनवादी वर्गचरित्र है और पुलिस सुधारों के अभाव में वह अभी भी इससे मुक्त नहीं हो पाई है।

इसी का कुफल है कि जो दलित, पीड़ित, वंचित और अल्पसंख्यक समुदाय नए-पुराने सामंतों, पुलिस और अपराधियों सबकी कारगुजारियों की सबसे ज्यादा कीमत चुकाते हैं, पुलिस द्वारा अपराधी करार देकर मुठभेड़ में मार दिए जाने वाले युवा भी सर्वाधिक उन्हीं के होते हैं। कई बार वे पुलिस के अत्याचारों के प्रतिरोध की भी कीमत चुकाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के दिशा-निर्देश को दरकिनार करके बुलडोजर ऐक्शन भी सबसे ज्यादा इन्हीं के विरुद्ध होता है। लेकिन योगी की सरकार को ऐसी किसी भी समझदारी से वास्ता रखना गवारा नहीं है। ■

इतना सस्ता क्यों होता जा रहा है सड़क पर जीवन?

सड़क दुर्घटना केवल यातायात संबंधी घटना नहीं है; वह सामाजिक, आर्थिक और मानवीय त्रासदी है

शैलेंद्र चौहान

गुरुग्राम की सड़क पर सिया को कार से टक्कर मारने की घटना ने हिट-एंड-रन को एक बार फिर चर्चा के केन्द्र में ला दिया है। उपलब्ध वीडियो के आधार पर सिया का आरोप है कि कार ने उनका पीछा किया और जानबूझकर उनकी बाइक को टक्कर मारी। दूसरी ओर आरोपी कल्याण बैंसला ने जानबूझकर टक्कर मारने से इनकार किया है। उसका कहना है कि बाइक सवारों के बार-बार आगे निकलने और धीमा होने के कारण स्थिति बनी और टक्कर दुर्घटनावश हुई। पुलिस ने मामले की जांच करते हुए हत्या के प्रयास की धारा भी जोड़ी है। इसलिए अंतिम निष्कर्ष जांच और न्यायिक प्रक्रिया से ही निकलेगा।

लेकिन इस घटना का महत्व केवल यह तय करने में नहीं है कि उस क्षण वास्तव में क्या हुआ था। इसका महत्व उस बड़े सवाल में है कि हमारी सड़कों पर मनुष्य का जीवन इतना सस्ता और दूसरे की सुरक्षा इतनी महत्वहीन क्यों होती जा रही है।

सड़क दुर्घटनाएं भारत में कोई छोटी या अपवादात्मक समस्या नहीं हैं। सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय की 2023 की रिपोर्ट के अनुसार, उस वर्ष देश में 4,80,583 सड़क दुर्घटनाएं हुईं, जिनमें 1,72,890 लोगों की मृत्यु हुई और 4,62,825 लोग घायल हुए। 2022 की तुलना में दुर्घटनाओं में 4.2 प्रतिशत और मौतों में 2.6 प्रतिशत वृद्धि हुई।

इन आंकड़ों को केवल संख्या मानकर आगे बढ़ जाना आसान है। लेकिन 1,72,890 मृतकों का अर्थ है प्रतिदिन सैकड़ों परिवारों का उजड़ना। प्रत्येक संख्या के पीछे एक मनुष्य, एक परिवार, उसकी आशाएं और उससे जुड़े अनेक जीवन होते हैं। सड़क दुर्घटना इसलिए केवल यातायात संबंधी घटना नहीं है; वह सामाजिक, आर्थिक और मानवीय त्रासदी है। सरकार स्वयं सड़क दुर्घटनाओं की सामाजिक-आर्थिक लागत को राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 3.14 प्रतिशत के बराबर मान चुकी है।

हिट-एंड-रन इस संकट का विशेष रूप से क्रूर रूप है। 2023 के सरकारी आंकड़ों में 'हिट एंड रन' कुल दुर्घटनाओं के लगभग 14.8 प्रतिशत और कुल सड़क दुर्घटना मौतों के लगभग 18 प्रतिशत से जुड़ा था। अर्थात दुर्घटना में मरने वाले लगभग हर छह लोगों में एक की मौत ऐसे टकराव में हुई, जिसमें वाहन चालक के भाग जाने की स्थिति थी।

लेकिन हिट एंड रन की असली समस्या केवल टक्कर नहीं है। समस्या उस मानसिकता की है जो टक्कर के बाद घायल मनुष्य की ओर देखने के बजाय अपने बच निकलने का रास्ता खोजती है।

यह मानसिकता अचानक पैदा नहीं हुई है। इसके पीछे भारतीय समाज में विकसित हो रहा एक विचित्र सड़क-मनोविज्ञान काम करता है। सड़क पर हम नागरिक कम और अपने वाहन के मालिक अधिक हो जाते हैं। कार बड़ी है तो अधिकार बड़ा है; वाहन तेज है तो रास्ता हमारा है; हॉर्न तेज है तो सामने वाले को हटना ही होगा। पैदल चलने वाला, साइकिल सवार, वृद्ध, बच्चा या दोपहिया चालक मानो सड़क का बराबर का नागरिक नहीं, रास्ते में आ जाने वाली बाधा है। यहीं से समस्या शुरू होती है।

हमारे भीतर सड़क पर 'पहले मैं' की मनोवृत्ति गहरी होती जा रही है। आगे निकलने की मामूली होड़ अचानक आक्रामकता में बदल जाती है। कोई रास्ता न दे तो गाली, हॉर्न, पीछा करना, वाहन आगे लगाकर रोकना और कभी-कभी वाहन को ही हथियार की तरह इस्तेमाल करना—ये घटनाएं बताती हैं कि सड़क केवल यातायात का क्षेत्र नहीं रही। वह अहंकार, अधीरता और प्रभुत्व के प्रदर्शन का क्षेत्र भी बनती जा रही है।

यह मनोविज्ञान केवल युवाओं तक सीमित नहीं है। उम्र, शिक्षा और आर्थिक स्थिति से परे इसका विस्तार दिखाई देता है। समस्या यह है कि हमने सड़क पर साझा जिम्मेदारी की संस्कृति विकसित नहीं की।

हमारे यहां ट्रैफिक अनुशासन अभी भी मुख्यतः पुलिस की उपस्थिति से पैदा होता है, नागरिक विवेक से नहीं। चौराहे पर पुलिसकर्मी खड़ा हो तो लाल बत्ती का सम्मान होता है। कैमरा लगा हो तो गति कम हो जाती है। लेकिन जैसे ही निगरानी दिखाई नहीं देती, नियमों का महत्व भी कम हो जाता है। इसका अर्थ है कि नियमों को नैतिक जिम्मेदारी नहीं बनाया है। नियम बाहरी दबाव हैं।

एक स्वस्थ समाज में व्यक्ति लाल बत्ती इसलिए नहीं मानता कि पुलिस देख रही है, बल्कि इसलिए मानता है कि दूसरी दिशा से आने वाला व्यक्ति भी उसी तरह सुरक्षित घर पहुंचना चाहता है जैसे वह स्वयं। यह बोध कमजोर है।

दुर्घटना को लेकर भी सामाजिक दृष्टि विचित्र रूप से हल्की है। 'एक्सीडेंट हो गया', 'गलती हो गई', 'ऐसा तो हो जाता है' जैसे वाक्य कई बार उस गंभीरता को ढंक देते हैं जिसमें किसी की जान जा सकती है। निश्चित रूप से हर दुर्घटना जानबूझकर नहीं होती। सड़क पर अनपेक्षित घटनाएं होती हैं। लेकिन दुर्घटना के बाद चालक का व्यवहार उसकी नागरिकता की असली परीक्षा है। घायल व्यक्ति को अस्पताल पहुंचाना, पुलिस को सूचना देना और घटनास्थल पर रुकना न्यूनतम मानवीय दायित्व होना चाहिए। इसके उलट भाग जाना अपराध को और गंभीर बनाता है।

सिया मामले में भी आरोपी की ओर से यह कहा गया कि टक्कर के बाद वह इसलिए रुका नहीं क्योंकि उसे आशंका थी कि बाइक सवार उसे पीट सकते हैं। दूसरी ओर सिया ने सवाल उठाया कि यदि टक्कर दुर्घटनावश हुई थी, तो घायल व्यक्ति की स्थिति देखने के लिए चालक रुका क्यों नहीं। इन दोनों दावों का निर्णय जांच करेगी, लेकिन यह प्रश्न व्यापक है—दुर्घटना के बाद हमारी पहली चिंता घायल की होती है या अपनी सुरक्षा, अपनी कार और अपने कानूनी बचाव की? यहां प्रशासन की भूमिका भी सामने आती है।

गुरुग्राम की घटना का महत्व केवल यह तय करने में नहीं कि हुआ क्या, बल्कि इसमें दूसरे की सुरक्षा इतनी महत्वहीन क्यों होती जा रही

भारत में सड़क सुरक्षा के लिए शिक्षा, इंजीनियरिंग, प्रवर्तन और आपात चिकित्सा—चार स्तरों वाली रणनीति की बात लंबे समय से की जाती रही है। इलेक्ट्रॉनिक निगरानी, स्पीड कैमरा, सीसीटीवी, स्वचालित नंबर प्लेट पहचान जैसी व्यवस्थाओं के प्रावधान भी हैं। हिट एंड रन पीड़ितों के लिए मुआवजे की राशि बढ़ाई गई है और 'गुड सेमेरिटन' यानी दुर्घटना में घायल की मदद करने वाले व्यक्ति की सुरक्षा के लिए भी नियम बनाए गए हैं। फिर भी जमीन पर प्रश्न वही है—क्या इन व्यवस्थाओं ने हमारी सड़क संस्कृति बदली है?

सरकारें दुर्घटना के बाद सक्रिय दिखाई देती हैं। कोई मामला वायरल हो जाए, मीडिया में चर्चा हो, जन आक्रोश पैदा हो, तो पुलिस कार्रवाई करती है, टीमें बनती हैं, गिरफ्तारी होती है और बयान जारी होते हैं। लेकिन सड़क सुरक्षा का वास्तविक अर्थ दुर्घटना के बाद अपराधी पकड़ना नहीं, दुर्घटना होने से पहले उसे रोकना है। यही वह जगह है जहां प्रशासन का सुधार-सरोकार कमजोर दिखाई देता है।

किस चौराहे पर सबसे अधिक दुर्घटनाएं होती हैं? कहां वाहन अनावश्यक गति से चलते हैं? किन सड़कों पर पैदल यात्रियों के लिए सुरक्षित क्रॉसिंग नहीं है? कहां प्रकाश व्यवस्था अपर्याप्त है? किस मार्ग पर बार-बार सड़क दुर्घटनाएं होती हैं? किस आयु वर्ग के लोग सबसे अधिक मर रहे हैं? किन परिस्थितियों में दोपहिया वाहन दुर्घटनाग्रस्त हो रहे हैं? इन सवालों पर लगातार काम करने वाली स्थानीय सड़क-सुरक्षा व्यवस्था कितनी प्रभावी है? दुर्घटना को 'घटना' मानकर दर्ज कर लेना और फिर अगली घटना की प्रतीक्षा करना सुधार नहीं है।

> सड़क दुर्घटना में 1,72,890 लोगों की मौत का अर्थ है प्रतिदिन सैकड़ों परिवारों का उजड़ना। हर संख्या के पीछे एक मनुष्य, एक परिवार, उसकी आशाएं और उससे जुड़े अनेक जीवन होते हैं

प्रशासन को 'दुर्घटना के बाद की पुलिस' से 'दुर्घटना रोकने वाली व्यवस्था' में बदलना होगा। सड़क की डिजाइन, गति सीमा, कैमरा आधारित प्रवर्तन, पैदल यात्रियों के लिए सुरक्षित मार्ग, स्कूल और अस्पताल क्षेत्रों में गति नियंत्रण, लाइसेंस प्रक्रिया, नियमित ड्राइविंग प्रशिक्षण और दुर्घटना-प्रवण स्थानों का वैज्ञानिक ऑडिट—इन सबको नियमित प्रशासनिक प्रक्रिया बनाना होगा।

सिर्फ जुर्माना बढ़ाने से भी संस्कृति नहीं बदलेगी। कानून का निश्चित और समान रूप से लागू होना अधिक महत्वपूर्ण है। जब चालक को विश्वास हो कि कैमरा न होने पर भी उल्लंघन दर्ज होगा, पुलिस की अनुपस्थिति में भी कार्रवाई होगी और प्रभावशाली व्यक्ति होने से कानून नहीं बदलेगा, तभी अनुशासन भीतर जाएगा।

आंकड़े भी बताते हैं कि समस्या कितनी गंभीर है। 2023 में देश में 1,60,509 दुर्घटनाएं घातक थीं और सड़क दुर्घटना की गंभीरता लगभग 36 मौत प्रति 100 दुर्घटनाएं थी। विश्व बैंक के एक अध्ययन का हवाला देते हुए केन्द्र सरकार ने यह भी कहा है कि भारत दुनिया के सड़क दुर्घटना-संबंधी मृतकों में लगभग 11 प्रतिशत हिस्सेदारी रखता है, जबकि दुनिया के वाहनों में भारत की हिस्सेदारी लगभग 1 प्रतिशत है। यह केवल यातायात व्यवस्था की विफलता नहीं है। यह नागरिक संस्कृति की भी विफलता है।

हमें बच्चों को ट्रैफिक नियम याद कराने से अधिक उन्हें दूसरे मनुष्य के जीवन का मूल्य समझाना होगा। ड्राइविंग स्कूलों में केवल वाहन चलाना नहीं, सड़क पर व्यवहार सिखाना होगा।

सिया की घटना इसलिए महत्वपूर्ण है कि उसने कैमरे के सामने घटित एक घटना को हमारे सामने रख दिया। कैमरा न होता तो कितनी घटनाएं केवल 'दुर्घटना' कहकर समाप्त हो जाती हैं, इसका अनुमान लगाना कठिन है। यही कारण है कि तकनीक को केवल अपराध पकड़ने का साधन नहीं, सड़क संस्कृति बदलने का उपकरण बनाना होगा। लेकिन अंततः कोई कैमरा हमारी जगह संवेदनशील नहीं हो सकता।

सड़क पर हमारी असली परीक्षा उस समय होती है जब कोई पुलिसकर्मी नहीं होता, कोई कैमरा नहीं होता और कोई हमें देखने वाला नहीं होता। हम तब कितनी गति से चलते हैं, लाल बत्ती पर रुकते हैं या नहीं, पैदल व्यक्ति को रास्ता देते हैं या नहीं, और दुर्घटना होने पर रुकते हैं या भागते हैं—यही हमारी नागरिकता का वास्तविक परिचय है। सड़कें केवल वाहनों के लिए नहीं होतीं। वे मनुष्यों के लिए होती हैं।

जिस समाज में सड़क पर दूसरे मनुष्य का जीवन दिखाई देना बंद हो जाए, वहां समस्या केवल हिट-एंड-रन की नहीं रह जाती। तब असली दुर्घटना हमारे भीतर हो चुकी होती है। ■

यह चेतावनी तो न जाए बेकार

26 अगस्त की बाढ़ न पहली थी न आखिरी, पर जरूरी यह समझना है कि हिमालय की इस अनसुनी पुकार से आखिर हम क्या सीखें

शेखर पाठक

फोटोः गेटी इमेजेज

नेपाल के नुवाकोट ज़िले के त्रिशूली में अचानक आई बाढ़ से हुई यह तबाही बताती है कि संकट कितना बड़ा है

26 **अगस्त** को तिब्बत-नेपाल सीमा के जिस अतिसंवेदनशील इलाके से प्रलयंकारी आपदा शुरू हुई, वह भूगर्भीय रूप से बेहद कच्चा और नाजुक है। पिछले ही साल 8 जुलाई 2025 को यहां बाढ़ आई थी जिसमें 18 लोगों की जान गई थी। तब नेपाल-तिब्बत सड़क, रसुवागढ़ी की चौकी, पुल, जलविद्युत परियोजनाएं और ट्रांसमिशन लाइनें तहस-नहस हो गई थीं। उस साल तिब्बत की तरफ क्या हुआ, इसका कोई आधिकारिक लेखा-जोखा सामने नहीं आया, हालांकि तब चीन की ओर से एक पूर्व चेतावनी जरूर मिली थी।

इस बार तो वैसी कोई पूर्व चेतावनी संभव ही नहीं थी। नीले आसमान तले, जब कोई बारिश नहीं हो रही थी, एक खुले दिन ऐसी आपदा की कल्पना भी नहीं थी। सब कुछ इतनी तेजी से घटा कि सूचना प्रणाली उसे समय पर पकड़ ही नहीं सकी। फिर भी अगले ही दिन चीन की तरफ से तुरंत यह सूचना आई कि भूस्खलन के कारण भोटे कोसी की दो सहायक नदियों- तुशचेन और पुरेपू-में दो ताल बन गए हैं, अतः नेपाल सावधानी बरते। तिब्बत में भी निश्चय ही जन हानि हुई और संपत्ति खाक हुई, जिसकी आधिकारिक सूचना का अब भी इंतजार है।

ग्यारह साल पहले, 25 अप्रैल 2015 को नेपाल में 7.8 तीव्रता का महाभूकंप आया था, जो 1934 के बाद सबसे बड़ा भूकंप था। उसमें नेपाल, भारत, चीन और बांग्लादेश में 9,000 से अधिक लोग मारे गए और 22,000 से ज्यादा घायल हुए थे।

ताजा आपदा में 7 सितंबर 26 तक 1,400 से अधिक जिंदगियां खत्म हो चुकी हैं- जिनमें 1,357 नेपाल में और 43 तिब्बत में हैं। संपत्ति का जो भारी नुकसान हुआ है-सरकारी दफ्तर, स्कूल, सड़कें, पुल, जलविद्युत और सौर ऊर्जा परियोजनाएं, निजी घर, दुकानें, होटल, रेस्तरां, कुटीर उद्योग और साथ ही मंदिर, चोर्तन, घराट और पंचायत घर जैसी सामुदायिक संपत्तियां- उसका कोई ओर-छोर नहीं। नेपाल के वित्तमंत्री ने ध्वंस का शुरुआती अनुमान ही 4-5 अरब डॉलर लगाया है।

खबर लिखे जाने तक 32 मुल्कों के 1,600 से अधिक लोग लापता थे, जिनमें 300 भारतीय हैं। करीब 1,000 लोग नेपाल तो 600 के आसपास तिब्बत से लापता हैं। यह आंकड़ा अभी बढ़ता रहने वाला है। मारे गए या उजड़े लोग मूलतः खेतिहर किसान, पशुपालक और छोटे कारोबारी थे। कैलास मानसरोवर और दूसरे तीर्थों की यात्रा के लिए हर साल हजारों लोग इसी रास्ते का रुख करते हैं, इसलिए आपदा के वक्त इलाके में तीर्थयात्रियों और सैलानियों की अच्छी-खासी संख्या थी।

अगर तिब्बत और नेपाल में विकास का मॉडल क्षेत्र के भूगर्भ, भूकंपीयता, भूगोल और बाढ़ के इतिहास की पड़ताल के बाद बनाया गया होता, तो कम तबाही होती। राजव्यवस्थाएं अनपढ़ तो नहीं होतीं पर ज्यादा चतुराई दिखाती हैं और सबक नहीं सीखतीं, अभियांत्रिकी बदलते पर्यावरण के बरक्स बदल नहीं पाती।

चंद मिनटों में सैलाब ने 12 जलविद्युत परियोजनाओं-जिनमें आठ चालू थीं और चार निर्माणाधीन-के अलावा 41 पुलों, ट्रांसमिशन लाइनों, बिजली सब-स्टेशनों, भारी मशीनों, बुलडोजरों और ट्रकों को लील लिया। नुवाकोट का 25 मेगावाट का सोलर प्रोजेक्ट मलबे में दफन हो गया। 100 किलोमीटर से ज्यादा लंबा हाईवे बर्बाद हो गया। त्रिशूली हाइड्रो प्रोजेक्ट और दूसरी सुरंगों में 70 भारतीयों समेत 917 मजदूर जिंदगी की जंग लड़ रहे हैं। नदी 193 किमी. प्रति घंटे की अविश्वसनीय रफ्तार से 10 से 20 करोड़ क्यूबिक मीटर मलबा, कीचड़, साद, पेड़, मशीनें वगैरह बहा ले गई!

*

अब नेपाल ने तो सोचना-विचारना है ही कि इस आपदा के दुष्प्रभावों से कैसे निपटे, क्या सबक ले और आगे क्या सावधानियां बरते। लेकिन इस वक्त जिस चीज की सबसे ज्यादा दरकार है, वह है समूचे हिमालयी देशों- अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत, नेपाल, भूटान, म्यांमार, बांग्लादेश और चीन-के बीच एक व्यापक और खुला संवाद। हमारे पर्वत और नदियां ही साझा नहीं, हमारी चुनौतियां भी साझी हैं जैसे- बढ़ता प्रदूषण, भूकंप, झीलों के फटने से आने वाली प्रलयंकारी बाढ़ें (ग्लॉफ- ग्लेशियर लेक आउटब्रस्ट फ्लड) और जलवायु परिवर्तन से उपजी अन्य आपदाएं, जिनका सिलसिला आने वाले दिनों में तेज ही होना है।

> अगर विकास का मॉडल क्षेत्र के भूगर्भ, भूकंपीयता, भूगोल और बाढ़ के इतिहास की पड़ताल करने के बाद बनाया गया होता, तो कम तबाही हुई होती

नेपाल को भारत और चीन के साथ तुरंत बातचीत शुरू करनी चाहिए क्योंकि हमारी जीवन रेखाएं यानी नदियां तीनों देशों में बहती हैं, लेकिन इस चर्चा का दायरा पूरे हिमालय को समेटे हुए होना चाहिए। नेपाल को अंतरराष्ट्रीय जलवायु सम्मेलनों, पर्यावरण मंचों और संयुक्त राष्ट्र में भी अपनी बात पूरी ताकत से रखनी होगी।

यह आपदा नेपाल के राजनीतिक, सामाजिक, सामुदायिक, सांस्कृतिक और धार्मिक नेतृत्व को अपने देश के लिए विकास का एक अधिक सुरक्षित और सर्वमान्य मॉडल तैयार करने का मौका भी देती है। सबसे ज्यादा तो युवाओं को इसपर गहराई से विचारना होगा। किसी और भूगोल या मैदानी पर्यावरण के लिए गढ़ी गई परियोजनाएं नेपाल या अन्य हिमालयी क्षेत्रों पर दोबारा थोपने की गलती नहीं होनी चाहिए। टिकाऊ खेती, कुटीर उद्योग, पशुचारण और मौसमी प्रवास को तीर्थाटन, पर्यटन और ऊर्जा उत्पादन के नियोजन के केन्द्र में रखना होगा।

'स्मॉल इज ब्यूटीफुल' और 'सकल राष्ट्रीय खुशहाली' का विचार पहाड़ों और नाजुक इलाकों के लिए ही बना है। भले ही ये विचार अक्षरशः लागू न हो सकें, पर जहां तक मुमकिन हो, इन्हें अमल में लाना चाहिए। अभियांत्रिकी और तकनीक पहाड़ों की मुश्किलों को सुलझाने के काम आएं, न कि पहाड़ों के सीने को चुनौती देने के लिए।

हिमालय एक लंबी भूगर्भीय यात्रा के बाद बना है और वह आज भी बनने और ऊपर उठने के दौर में है। भूकंप, भूस्खलन, हिमस्खलन, ग्लेशियरों का पीछे सरकना, बर्फीले तूफान, बाढ़ और दावानल उसके स्वभाव के अभिन्न अंग हैं। मनुष्य इन पर रत्ती भर भी काबू नहीं पा सका है। वह जो कर सकता है, वह केवल जान-माल की हिफाजत के संवेदनशील रास्ते खोजना है।

मानसून से चलने वाले पारिस्थितिकी तंत्र में बाढ़ के कई चेहरे होते हैं। वह समूची भू-आकृति को बदल कर रख देती है। बाढ़ केवल बारिश और जलचक्र से ही नहीं, बल्कि जलागम (वाटरशेड) की सेहत, मूसलाधार बारिश, वानस्पतिक आवरण, ढाल, भूकंपीयता और भूजल की स्थिति से भी तय होती है। नदी के पाट और उसके प्रवाह क्षेत्र में इंसानी छेड़छाड़- जैसे बांध, बैराज, अनियंत्रित खनन, जंगलों का कटान, कमजोर पड़ते जलागम और किनारों पर बेधड़क अतिक्रमण-नदी के मिजाज को और खूंखार बना देते हैं। ऊपर से जलवायु परिवर्तन का कोढ़ इसमें खाज का काम करता है।

नदियों के संग जीने वाला समाज उनके मिजाज, पानी की घट-बढ़ और उसके बदलते रंगों को बहुत बारीकी से परखता रहा है। लोग पारंपरिक रूप से नदी के पाट या बाढ़ के मैदानों में बसने से बचते थे। एक जमाना था जब मैदानों में छोटी बाढ़ों का इंतजार होता था क्योंकि वे उपजाऊ माटी लेकर आती थीं। पहाड़ों में यही बाढ़ें नदी घाटियों के किनारे 'सेरों' (उपजाऊ समतल टुकड़ों) की रचना करती हैं। इसी तरह उच्च हिमालय के बाशिंदे ग्लेशियरों और हिमस्खलनों के स्वभाव को भीतर तक समझते हैं।

जब हम पीढ़ियों से मान्य अलिखित नियमों और मर्यादाओं को धता बताते हैं, जब लालच या मजबूरी में खतरनाक अतिक्रमण होने लगते हैं, तब सामाजिक और सामुदायिक नेतृत्व की जिम्मेदारी बनती है कि वह लोगों को 'लक्ष्मण रेखा' न लांघने की याद दिलाए। बच्चों की परवरिश में यह चेतना घुली होनी चाहिए; इसे पढ़ाई-लिखाई और संस्कारों का हिस्सा बनाना होगा।

हिन्दुकुश-हिमालयी क्षेत्र की एक और भारी विवशता है: यहां की कुल जमीन का बमुश्किल 5 फीसद हिस्सा ही खेती के लायक है। उपजाऊ जमीन का बड़ा हिस्सा नदी घाटियों में सिमटा है और बाकी सीढ़ीदार खेतों में है। निजी मिल्कियत की जमीन भी यही है। जमीन की इसी भयानक किल्लत के चलते बार-बार अतिक्रमण का दबाव बना और लोगों को बार-बार इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी। बीते कुछ दशकों में इस जमीन, जंगल, पानी, वन्यता और जैव-विविधता पर सबसे निर्मम प्रहार तथाकथित 'विकास' के नाम पर हुआ है। विकास जरूरी है, पर विकास के मौजूदा मॉडल हिमालय की पारिस्थितिकी के सीधे खिलाफ हैं। आधुनिक इंजीनियरिंग कई मामलों में उपयोगी है, लेकिन हिमालय को एक ऐसा संवेदनशील नजरिया चाहिए जो यह याद रखे कि यह एक युवा, नाजुक और भूगर्भीय भ्रंशों (फाल्ट्स) के जाल पर टिका पर्वत तंत्र है, जो भूकंपों, भूस्खलनों और हिमस्खलनों से लगातार आहत होता रहता है।

*

नेपाल और उत्तराखंड के कई हिस्से भूविज्ञानियों और भूकंप-विशेषज्ञों द्वारा 'सिस्मिक गैप' माने जाते हैं। सिस्मिक गैप वे इलाके हैं जहां सदियों से कोई बड़ा भूकंप नहीं आया है। इसका सीधा मतलब यह है कि भूगर्भीय ऊर्जा जमीन के भीतर घुटकर जमा होती जा रही है, जो किसी भी दिन एक महाभूकंप को जन्म दे सकती है। इनमें से कई संवेदनशील क्षेत्र 'मेन सेंट्रल थ्रस्ट' (एमसीटी) के इर्द-गिर्द बैठे हैं, जो हिमालय का सबसे हलचल भरा भ्रंश माना जाता है।

तिब्बत और हिमालय-या वृहद रूप में कहें तो समूचा भारतीय उपमहाद्वीप तमाम भू-भौमिक, जलवायुगत, पारिस्थितिक और कृषि क्षेत्रों में बंटा हुआ है। अलग-अलग इलाकों में नदियों की चाल-ढाल भी अलग है। उच्च हिमालय में ज्यादातर 'वी' आकार की तिकोनी संकरी घाटियां हैं। जब बर्फ और चट्टानें टूटकर लुढ़कती हैं, तो वे कुछ वक्त के लिए नदी की धार को बांधकर कृत्रिम ताल बना देती हैं। जब यह ताल फूटता है, तो नीचे की घाटी में सर्वनाश बरपाता है। यह बात अब छिपी नहीं रही।

हमें पुरानी आधारभूत बर्फ (पर्माफ्रॉस्ट) और ताजी बर्फ के बुनियादी फर्क को भी समझना होगा। उच्च हिमालय और दर्रों में आधारभूत बर्फ के ऊपर ताजी बर्फ बैठ जाती है, जबकि पानी अपनी राह खोजकर बह निकलता है। लेकिन जब बढ़ते तापमान के चलते अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर भी बर्फ या ओलों के बजाय सीधे बारिश होने लगे, तो पानी की विध्वंसक ताकत कई गुना बढ़ जाती है।

16-17 जून 2013 की केदारनाथ त्रासदी को याद करें, जब आसमान से आफत बरसी थी। चोराबाड़ी ताल में भी मूसलाधार बारिश हुई, जहां मोरेन और विशाल पत्थरों का कुदरती बांध टूट गया। ताल छोटा था, लेकिन पानी का रेला बेहिसाब था। फैलाव होने के बावजूद केदारनाथ का बड़ा हिस्सा बह गया। लेकिन असली और भयानक विनाश रामबाड़ा और गौरीकुंड में हुआ, जहां मंदाकिनी बेहद संकरी घाटी से होकर गुजरती है। नीचे की तरफ बैराजों और सुरंगों से निकले मलबे ने इस त्रासदी को कई गुना बढ़ा दिया। पर यह बात गांठ बांध लेनी चाहिए कि इस तबाही का अगुवा 24 घंटे में हुई 400 मिमी बारिश थी।

जैसे-जैसे धरती तप रही है और उच्च हिमालय में बर्फबारी कम हो रही है, ग्लेशियरों के छोटे-छोटे ताल फैलने लगे हैं। कभी-कभी वे आपस में मिलकर एक बड़े और जानलेवा खतरे की शक्ल अख्तियार कर लेते हैं। 3-4 अक्टूबर 2023 को सिक्किम में यही हुआ, जब दक्षिण ल्होनक ग्लेशियर की झील फटने से तीस्ता नदी में जल-प्रलय आ गया। जान-माल की भारी तबाही के साथ 14,000 करोड़ रुपये की लागत वाला और 1,200 मेगावाट बिजली की उम्मीद वाला तीस्ता-III बांध ताश के पत्तों की तरह ढह गया।

यह पूरी तरह से ग्लेशियर झील फटने से आई बाढ़ (ग्लॉफ) थी। झील की मौजूदगी का पता था, लेकिन उसके खतरे को गंभीरता से नहीं समझा गया। न ही स्थानीय लेप्चा समुदाय की उस गुहार को सुना गया, जो तीस्ता के बाढ़ भरे इतिहास से पीढ़ियों से वाकिफ था। तापमान बढ़ने से पिघलती बर्फ से निकले पानी की मात्रा सामान्य ग्लेशियर के बहाव से 1.6 गुना ज्यादा हो जाती है। ग्लेशियर झीलों के फटने का जोखिम अब टाला नहीं जा सकता, यह पूरे हिमालय में बढ़ना ही है। 200 वैज्ञानिकों ने 5 साल के गहन अध्ययन के बाद चेतावनी दी है कि यदि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन पर लगाम न कसी गई, तो सन् 2100 तक हिमालय अपनी 66 फीसद बर्फ खो देगा। यह एक रूह कंपा देने वाला अनुमान है।

हिमाचल प्रदेश की ब्यास और पार्वती नदियों की मिसाल लें। ब्यास रोहतांग दर्रे के पास ब्यासकुंड ताल से और पार्वती पिन-पार्वती दर्रे के पास मनतलाई ग्लेशियर से निकलती है। कुल्लू में दोनों का संगम होता है। बीते दशकों में इनके जलग्रहण क्षेत्रों और किनारों पर भारी इंसानी अतिक्रमण हुआ। सितंबर 1995 में ब्यास की बाढ़ ने जान-माल की भारी बर्बादी की थी। 1996 में सुप्रीम कोर्ट ने 'एम.सी. मेहता बनाम कमलनाथ' मामले में कड़ा दखल देकर इस अतिक्रमण पर ब्रेक लगाया था। इन दोनों नदियों में आई बाढ़ का मुख्य कारण नदी के किनारे हाईवे का निर्माण, अनियोजित खुदाई और रोहतांग दर्रे के नीचे बनी विशाल सुरंग से निकले मक-मलबे को सीधे नदियों में उड़ेलना था। जलागम में अनियंत्रित निर्माण, भूकटाव और जलवायु परिवर्तन ने आग में घी का काम किया।

> हिमालय अभी भी बन रहा है और विकसित हो रहा है। इसे एक ऐसे विकास मॉडल की आवश्यकता है जो इस बात को ध्यान में रखे

1 अगस्त 2024 को पार्वती नदी पर बने मलाणा बांध के टूटने ने इस तबाही को और बढ़ा दिया। 2022 से 2025 तक इस घाटी ने लगातार चार साल आपदाएं झेलीं, जिसमें भारी जान-माल का नुकसान हुआ। लेकिन ये सब सिर्फ झीलों के टूटने से आई बाढ़ें नहीं थीं, बल्कि इंसानी मनमानी का नतीजा भी थीं।

वैज्ञानिक बार-बार चेता रहे हैं कि हिमालय में तापमान बढ़ने की रफ्तार वैश्विक औसत से करीब दोगुनी है। यह तेजी इस संवेदनशील इलाके को हिमस्खलन, भूस्खलन और विनाशकारी बाढ़ों के मुहाने पर ला खड़ा करती है। संयुक्त राष्ट्र ने 2023 में ही आगाह किया था कि नेपाल का हिमालय अपने बर्फ भंडार का एक तिहाई हिस्सा गंवा चुका है। यह जानना भी जरूरी है कि नेपाल में 2,000 से अधिक ग्लेशियर झीलें हैं, जिनमें से 21 को वैज्ञानिकों ने बेहद खतरनाक श्रेणी में रखा है।

तमाम हिमालयी देश और उनके प्रांत तीन बड़े खतरों से एक साथ जूझ रहे हैं। पहला पारिस्थितिक है, दूसरा आपदा से जुड़ा और तीसरा जलवायु परिवर्तन से संचालित। ये तीनों आपस में गुंथे हुए हैं और इनके कई आयाम हैं। कोई भी पारिस्थितिक क्षति आपदाओं की संहारक क्षमता को कई गुना बढ़ा देती है, और ये दोनों ही आज बदलते मौसम के मिजाज से संचालित हो रहे हैं।

नेपाल के मामले में यह साफ कहा जा सकता है कि वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में उसकी अपनी हिस्सेदारी महज 0.1 प्रतिशत है—यानी न के बराबर। इसके बावजूद वह भारतीय उपमहाद्वीप के अपने पड़ोसियों द्वारा हवा में छोड़े जा रहे ब्लैक कार्बन और भूरी धूल की भारी कीमत चुका रहा है, जिसने हिमालय की तपिश को बढ़ाने में बड़ा योगदान दिया है। अब उसके पहाड़ों में भी धुंध की चादर दिखने लगी है।

हिमालयी देशों के बीच और उनके तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के बीच एक ईमानदार संवाद, समन्वय और साझी समझदारी की अब सख्त जरूरत है। हिमालय को लेकर क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर के शोध साझा होने चाहिए। वैज्ञानिकों को आपस में सीधे बात करनी होगी, और नदियों जैसी साझी कुदरती संपदा के लिए आपसी समझौतों के दायरे में आना होगा। आपदाओं और बाढ़ से जुड़े पारंपरिक लोक-ज्ञान और अनुभवों का आदान-प्रदान भी उतना ही जरूरी है।

यह सही है कि हिमालय के इन बीहड़ और कठिन इलाकों में रहने वाला समाज कुदरत के एक तय जोखिम को स्वीकार करके ही जीता आया है। जब जानी-अनजानी वजहों से विपदाएं आती हैं, तो पहाड़वासियों को कोई हैरत नहीं होती। लेकिन आज, भूगर्भीय और भौगोलिक कारणों के साथ जब बेकाबू जलवायु परिवर्तन का जानलेवा संकट जुड़ चुका है, तो खतरे का पैमाना कहीं बड़ा हो गया है।

पहाड़ों में विकास का काम उसी अंधी दौड़ में नहीं हो सकता जैसे हम मैदानों, पठारों या रेगिस्तानों में करते हैं। समाज इन त्रासदियों के जख्म देर से भूलता है, पर सरकारें बहुत जल्दी भूल जाती हैं और उनसे कोई सबक नहीं सीखतीं। नतीजा यही होता है कि जब अगली आपदा आती है, तो गाज फिर उन्हीं हाड़-मांस के बेबस आम लोगों पर ही गिरती है। ■

शेखर पाठक जाने-माने पर्यावरणविद, हिमालयी इतिहासकार, 'पहाड़' संस्था के संस्थापक और इसी नाम से निकलने वाली शोध पत्रिका के संस्थापक संपादकों में एक हैं

Nehru centre

नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम

वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर
मुंबई के हृदयस्थल में,
बीकेसी से सटे,
एयरपोर्ट के पास

इन सबके लिए सर्वोत्तमः
- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम

ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे

बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051

Published Date 20 September, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

सत्ता बचाएंगे या साहित्य की विश्वसनीयता?

शर्त केवल इतनी है कि संगठन रचना से बड़ा न हो जाए, और महत्वाकांक्षा मनुष्य से बड़ी न हो जाए

शैलेंद्र चौहान

हिन्दी में लेखक संगठनों का इतिहास साहित्य, विचारधारा, सत्ता, सामाजिक परिवर्तन और लेखक की स्वतंत्रता के बीच बदलते संबंधों का है। इन संगठनों का उभार किसी संयोग का परिणाम नहीं था। उनका वर्तमान पराभव भी केवल कुछ व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा, गुटबाजी या निष्क्रियता से नहीं समझा जा सकता। इसके पीछे भारतीय समाज और साहित्य में आए व्यापक परिवर्तन काम कर रहे हैं।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे-चौथे दशक में जब लेखक संगठित होने लगे, तब साहित्य को समाज से अलग किसी सौंदर्यात्मक द्वीप की तरह देखने की प्रवृत्ति को चुनौती मिल रही थी। औपनिवेशिक दमन, स्वतंत्रता आंदोलन, साम्राज्यवाद-विरोध, किसान-मजदूर आंदोलनों और सामाजिक असमानताओं ने साहित्य की भूमिका को नए ढंग से परिभाषित किया। प्रगतिशील लेखक संघ का गठन इसी ऐतिहासिक परिस्थिति में हुआ। प्रेमचंद के अध्यक्षीय भाषण से लेकर सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनंद, फैज़, कृश्न चंदर, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन और आगे की पूरी परंपरा तक लेखक संगठन केवल साहित्यकारों के मिलने-जुलने का मंच नहीं रहे; वे अपने समय की सामाजिक बेचैनी को अभिव्यक्ति देने वाली वैचारिक शक्तियां भी बने।

उस दौर की सबसे बड़ी उपलब्धि यह दिखाई देती है कि लेखक पहली बार बड़े पैमाने पर कह रहे थे कि साहित्य का समाज के प्रति कोई उत्तरदायित्व है। रचना केवल निजी अनुभूति नहीं, अपने समय की संरचनाओं से मुठभेड़ भी है। भूख, गरीबी, सामंती शोषण, स्त्री की स्थिति, जातिगत विषमता, औपनिवेशिक दासता और मनुष्य की गरिमा जैसे प्रश्न साहित्य की केन्द्रीय चिंता बने। संगठन ने लेखक को सामूहिक आवाज दी।

स्वतंत्रता के बाद परिस्थितियां बदलीं, लेकिन लेखक संगठनों की आवश्यकता समाप्त नहीं हुई, बल्कि लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर सत्ता और समाज के नए संबंधों ने उन्हें नए प्रश्न दिए। जनवादी लेखक संघ, जन संस्कृति मंच और अन्य साहित्यिक-सांस्कृतिक संगठनों ने अलग-अलग वैचारिक आग्रहों के साथ हस्तक्षेप किया। आपातकाल के अनुभव, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर संकट, सांप्रदायिकता, जातिवाद, साम्राज्यवाद और राज्यसत्ता के दमन के विरुद्ध साहित्यकारों की सामूहिक आवाज कई अवसरों पर दिखाई दी।

लेकिन यहीं से लेखक संगठनों की राजनीति का दूसरा चेहरा भी उभरता है। विचारधारा ने जहां संगठन को ऊर्जा दी, वहीं धीरे-धीरे संगठन विचारधारा का बंद कमरा भी बनने लगे। साहित्य के भीतर विविधता स्वाभाविक थी, पर संगठन कुछ समय के लिए अक्सर अपने-अपने वैचारिक घेरे में सीमित होते गए। असहमति को वैचारिक विचलन समझने की प्रवृत्ति बढ़ी। किसी लेखक की रचनात्मक उपलब्धि से अधिक यह महत्वपूर्ण होने लगा कि वह किस खेमे में खड़ा है। साहित्यिक मूल्यांकन धीरे-धीरे संगठनात्मक संबद्धता और व्यक्तिगत समीकरणों से प्रभावित होने लगा। यहीं लेखक संगठन और लेखक समुदाय के बीच दूरी पैदा हुई।

9 अप्रैल वर्ष 1936 में लखनऊ के रिफ़ाअ-ए-आम क्लब में हुआ प्रगतिशील लेखक संघ सम्मलेन जो अपने समय की सामाजिक बेचैनी को अभिव्यक्ति देने वाला वैचारिक ताकत बना

किसी भी संगठन का आरंभ आदर्श से होता है, लेकिन उसका संचालन मनुष्यों द्वारा होता है। मनुष्य जहां हैं, वहां पद, प्रतिष्ठा, प्रभाव और संसाधनों का प्रश्न भी आएगा। अध्यक्ष कौन होगा, महासचिव कौन बनेगा, किस लेखक को मंच मिलेगा, किसे पुरस्कार की अनुशंसा होगी, किसे सम्मेलन में बुलाया जाएगा, किसकी पुस्तक पर चर्चा होगी—ये छोटे दिखाई देने वाले प्रश्न धीरे-धीरे साहित्यिक सत्ता के प्रश्न बन जाते हैं।

एक समय जो संगठन साहित्य और समाज की सत्ता-संरचनाओं पर सवाल उठाते थे, उनके भीतर भी छोटी-छोटी सत्ता-संरचनाएं बनने लगीं। हालांकि लेखक संगठनों की राजनीति को केवल साहित्यिक संस्थाओं की आंतरिक खींचतान के रूप में देखना उसके वास्तविक चरित्र को छोटा करके देखना होगा।

> लेखक संगठनों के सामने असली चुनौती अस्तित्व की नहीं, विश्वसनीयता की है। उन्हें तय करना होगा कि वे साहित्यिक पदाधिकारियों के क्लब बनना चाहते हैं या समाज की बेचैनी को अभिव्यक्ति देने वाली लोकतांत्रिक संस्थाएं

यह विडंबना केवल किसी एक संगठन की नहीं है। लगभग हर संस्था के साथ ऐसा होता है। प्रारंभिक पीढ़ी संगठन को मिशन की तरह बनाती है; अगली पीढ़ी उसे परंपरा की तरह संभालती है; और तीसरी पीढ़ी कई बार उसे पद और प्रतिष्ठा की व्यवस्था में बदल देती है। तब संगठन का उद्देश्य पीछे चला जाता है और संगठन स्वयं उद्देश्य बन जाता है। लेखक संगठनों के पराभव का एक बड़ा कारण यही है कि वे साहित्य के बदलते भूगोल को पहचान नहीं सके।

हिन्दी साहित्य में पिछले कुछ दशकों में अनेक नई आवाजें आईं—दलित साहित्य, स्त्री लेखन, आदिवासी साहित्य, अल्पसंख्यक अनुभव, क्षेत्रीय अस्मिताएं, प्रवासी अनुभव और हाशिये के अनेक समुदायों की रचनात्मक उपस्थिति। इन आवाजों ने साहित्य की स्थापित सत्ता को चुनौती दी। लेकिन पारंपरिक लेखक संगठनों ने इन परिवर्तनों को हमेशा उतनी गंभीरता से ग्रहण नहीं किया जितनी आवश्यकता थी। कई बार नए लेखकों को संगठन में आमंत्रित किया गया, लेकिन निर्णायक स्थान पुराने समूहों के पास ही रहा। इससे एक विचित्र स्थिति पैदा हुई—संगठन सामाजिक परिवर्तन की भाषा बोलते रहे, लेकिन उनकी अपनी संरचना पर्याप्त रूप से नहीं बदली।

दूसरी बड़ी समस्या रही वैचारिक जड़ता। जिस समय विचारधारा लेखक को व्यापक सामाजिक यथार्थ से जोड़ती थी, उसी समय के नारे और शब्दावली बाद के दशकों में कई बार यांत्रिक रूप से दोहराई जाने लगी। समाज बदल गया, अर्थशास्त्र बदल गया, संचार माध्यम बदल गए, पाठक बदल गया, लेखक की आर्थिक और सामाजिक स्थिति बदल गई, लेकिन संगठनात्मक भाषा का बड़ा हिस्सा पुराने मुहावरों में अटका रहा।

वास्तविक संकट संगठन की विश्वसनीयता का है। जब किसी संगठन की बैठकों में वही चेहरे बार-बार दिखाई देते हैं, पदों का पुनर्वितरण कुछ सीमित लोगों के बीच होता रहता है, आलोचना को निजी विरोध समझा जाता है, और नए लेखक केवल भीड़ पूरी करने के लिए बुलाए जाते हैं, तब संगठन धीरे-धीरे जीवंत संस्था नहीं, बल्कि औपचारिक ढांचा बन जाता है। उसका सम्मेलन होता है, प्रस्ताव पारित होते हैं, भाषण होते हैं, और फिर सब कुछ पहले जैसा हो जाता है।

एक और गंभीर प्रश्न नेतृत्व का है। कई लेखक संगठन अपने समय के नए नेतृत्व को तैयार नहीं कर पाए। लंबे समय तक एक ही पीढ़ी का वर्चस्व बना रहा। वरिष्ठता का सम्मान आवश्यक है, लेकिन वरिष्ठता को स्थायी नेतृत्व में बदल देना संगठन की जीवन-शक्ति को समाप्त कर देता है। युवा लेखक तब संगठन के भीतर सहभागी नहीं, दर्शक बन जाते हैं। और जिस संगठन में युवा लेखक भविष्य नहीं देखते, उसका भविष्य बहुत लंबा नहीं होता।

नए लेखक संगठन को केवल लेखक का संगठन नहीं, पाठक और समाज से संवाद का मंच भी बनना होगा। उसे पुस्तक विमोचन और सम्मेलन की औपचारिकता से आगे जाना होगा। स्त्री, दलित, आदिवासी, युवा और अन्य नई रचनात्मक आवाजों को केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व नहीं, निर्णयकारी भागीदारी देनी होगी।

सबसे महत्वपूर्ण है संगठन को अपनी आंतरिक लोकतांत्रिक संस्कृति विकसित करनी होगी। पदों का नियमित परिवर्तन, पारदर्शी निर्णय प्रक्रिया, आर्थिक पारदर्शिता, खुली बहस और आलोचना को स्वीकार करने की क्षमता—ये किसी भी जीवंत लेखक संगठन की बुनियादी शर्तें होनी चाहिए।

संगठन को सत्ता के निकट जाने के बजाय सत्ता से प्रश्न पूछने की अपनी नैतिक क्षमता बचानी होगी। जिस दिन संगठन सत्ता की कृपा पर निर्भर हो जाता है, उसी दिन उसकी आवाज में वह नैतिक दृढ़ता नहीं रह जाती जिसके कारण समाज उसे सुनता है।

लेखक संगठनों के सामने असली चुनौती अस्तित्व की नहीं, विश्वसनीयता की है। उन्हें तय करना होगा कि वे साहित्यिक पदाधिकारियों के क्लब बनना चाहते हैं या समाज की बेचैनी को अभिव्यक्ति देने वाली लोकतांत्रिक संस्थाएं। वे कुछ परिचित चेहरों की प्रतिष्ठा बचाना चाहते हैं या नई पीढ़ी के लिए रास्ता खोलना चाहते हैं। वे प्रस्ताव पारित करने वाली संस्थाएं बने रहेंगे या उन प्रस्तावों को सामाजिक हस्तक्षेप में बदलेंगे।

लेखक संगठनों का उभार इसलिए हुआ था कि आज लेखक संगठनों की राजनीति में विचारधारा मानो पिछली सीट पर जा बैठी है और अवसरवाद ने ड्राइविंग सीट संभाल ली है। कभी जिन संगठनों की पहचान उनके वैचारिक सरोकारों, सामाजिक प्रतिबद्धता और सत्ता के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि से होती थी, वहां व्यक्तिगत समीकरण, गुटबाजी और पसंद-नापसंद निर्णायक होती जा रही है। वैचारिक मतभेद स्वस्थ बहस का आधार कम और व्यक्तिगत दूरी का बहाना अधिक बनते हैं।

परिणाम यह है कि संगठन सामूहिक साहित्यिक विवेक के मंच बनने के बजाय छोटे-छोटे प्रभाव-क्षेत्रों में बदलते जा रहे हैं, जहां पद, प्रतिष्ठा और दृश्यता के लिए अदृश्य प्रतिस्पर्धा चलती रहती है। सबसे चिंताजनक बात यह है कि इस अवसरवाद को अब अवसरवाद कहने का साहस भी कम होता जा रहा है; उसे व्यावहारिकता, समय की मांग और 'सबको साथ लेकर चलने' जैसी सुविधाजनक संज्ञाओं में ढक दिया जाता है। इस प्रक्रिया में संगठन तो बचा रहता है, लेकिन उसका वैचारिक और नैतिक औचित्य धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है।

इसलिए पुनर्जीवन का रास्ता किसी नए सम्मेलन, नए पदाधिकारी या नए घोषणापत्र से नहीं निकलेगा। उसे लेखक और संगठन के बीच टूटे विश्वास को फिर से बनाने से निकलना होगा।

साहित्य में अंततः संगठन नहीं, रचना टिकती है। लेकिन रचना को बचाने के लिए कभी-कभी संगठन भी जरूरी होते हैं। शर्त केवल इतनी है कि संगठन रचना से बड़ा न हो जाए, पद लेखक से बड़ा न हो जाए और महत्वाकांक्षा मनुष्य से बड़ी न हो जाए। शायद लेखक संगठनों के भविष्य का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यही है—क्या वे अपनी सत्ता बचाएंगे या साहित्य की विश्वसनीयता? ■

ADVERTISEMENT RATE CARD

w.e.f. 1 August 2026

NATIONAL HERALD ON SUNDAY संडे नवजीवन

The AJL Group has two weekly newspapers and three website portals in English, Hindi and Urdu

www.nationalheraldindia.com | www.navjivanindia.com | www.qaumiawaz.com

Commercial Display (w.e.f 1 August 2026)

Category of Advertisements (C/BW)	National Herald on Sunday (National Edition) NH(NE)	(Mumbai) NH(M)	Sunday Navjivan (National Edition) SNJ	Combined Rate
Full Page (1650 sq.cm)	Rs 8.65 Lakh	Rs 8.65 Lakh	Rs 8.65 Lakh	NH(NE)+NH(M)+SNJ Full Page Rs 22 Lakh
Half Page (800 sq. cm)	Rs 5 Lakh	Rs 4 Lakh	Rs 5 Lakh	
Quarter Page (400 sq. cm)	Rs 3 Lakh	Rs 3 Lakh	Rs 3 Lakh	NH(NE)+NH(M) Full Page Rs 17 Lakh
< Quarter Page (per sq. cm)	Rs 700	Rs 450	Rs 700	

PAGE PREMIUM	Display Ads BW/Color	Political Ads BW/Color
Front page	100% Surcharge	200% Surcharge
page (3 & back)	25% Surcharge	100% Surcharge
Specified page	50% Surcharge	50% Surcharge

*Advance payment is needed for all political advertisements.

Classified for festival greetings, anniversary & notices
Full page @ Rs 1,00,000 | Half Page @ 60,000
< 240 sq. cm @ Rs 175 per sq. cm

State Govt Advertisements/ C/BW
@ Rs 525 per sq. cm

The Associated Journals Limited
Herald House, 5A, Bahadur Shah Zafar Marg,
New Delhi 110002
Phone: 011-47636300 - 313
Whatsapp No: 9650400932
Email: advt@nationalheraldindia.com

Online Remittance/Bank Beneficiary Details:
Name: **Associated Journals Limited**
Bank Name: **Canara Bank**
Branch Name: **I P Estate, New Delhi-110002**
C/A No.: **90171010003955;** IFSC Code: **CNRB0019017**
GST No.: **27AAECA1180A1ZB ;** PAN No.: **AAECA1180A**

NOTE: Cheque / DD should be drawn in favor of "Associated Journals Limited" and sent to Herald House, 5-A Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002.

General Terms and Conditions

w.e.f. 1 August 2026

National Herald on Sunday (Delhi & Mumbai) and Sunday Navjivan

1. All advertisements are published in Edition(s) of the paper and charges are payable strictly in advance of publication by Bank Draft or Bank Transfer (RTGS) and /or cheques only except in the case of advertising agencies accredited to INS.

2. Advertisements are accepted for publication on top of advertisements positions on an additional charge of 25%. No advertisement is however published on top of news-matter.Top of column position cannot be guaranteed even on payment of additional charge of 25%.

3. Extra charges for top of column position are calculated on the total amount payable inclusive of amount payable for specified pages.

4. Every reasonable effort is made to publish an advertisement on the date(s) specified by an advertiser. The Management however reserves the right to vary the date or the scheduled date(s) of publication, with or without notice to the advertiser, owing to the exigencies of availability of spaces.

5. The management reserves the right to refuse, suspend or stop, in its discretion, publication of any advertisement without assigning any reasons.

6. While every endeavour will be made by the Management to avoid publication of competitive advertisements in close proximity to one another, no guarantee can be given in this respect nor will the claims be entertained for free insertions in the event of announcements of rival product appearing on the same page.

7. The placing of an order by an Advertiser/Advertising Agency constitutes a warranty by the Advertiser/Advertising Agency to the Associate Joumals Limited Management that the Advertiser/ Advertising Agency has secured the necessary authority and permission in respect of the use in the advertisement or advertisements of pictorial representation of (or purporting to be of) living persons and all references to words attributing to living persons.

8. The advertisements will be charged at the rate applicable on the day of publication of the advertisement irrespective of the date of booking, date of release order and whether the advertisement is part of any package/scheme.

9. Standing instructions are accepted over Whatsapp or email. However verbal instructions must be clear and specific. Quoting reference of the previous release order and/or new scheduled dates of insertions in respect of which the instructions are given. These instructions should be given afresh either through Whatsapp/email and/or Landline phone.

10 Booking of space for premium positions in all The Associated Journals Limited publications will be confirmed only upon receipt of original releaseorder. Fax/Scanned copies, Emails will be entertained for the same.

11. "Reader" advertisements are accepted but will be distinguished from 'news matter' by a rule around the advertisement matter and expression 'advt' will be added at bottom.

12. Solus/Semi Solus positions cannot be guaranteed on the front page.

13. Cancellation charges @20% of the total cost of the front/Full page advertisement shall be levied if a cancellation of booking is made two days before the scheduled date of publication. Cancellation charges @35% of the total cost of the full front-page advertisement shall be levied if the cancellation of a booking of front/full page advertisement is made one day before the scheduled date of the publication.

14. In the event of printing mistake, omission or non-publication of advertisement, the advertising agencies shall have to furnish the instructionson behalf of their client for republication. In the event of a dispute the liability of Management shall be restricted to the amount received against sale of spaces for the advertisement received. All disputes /claims regarding advertisement /complaints must be made within a period of one month of publication date after which no claim will be entertained.

15. The Management shall not be responsible for any loss or damage caused by an error or inaccuracy in the printing of/or omission in inserting advertisements.

16. In case of dispute, the agency shall not be entitled to invoke any condition suggestive of existence of an arbitration agreement unless specifically agreed to by the Management.

17. No deduction is allowed from bills raised against publication of advertisement(s) on account of any defective insertion(s). Any claims in these respects, if admitted, will be met by publishing a corrigendum/ free insertion or the like, depending upon the merits of the claim vis-a-vis the error in publishing the advertisement(s) or other materials. Claims for refund or for compensation, if admitted, shall be restricted to the charges for advertisement received by Management. The decision of the management shall be final in this regard.

18. The advertisements released by Government/Semi Government/ Undertakings/Autonomous body are published in classified display column only at commercial rates irrespective of the number of words.

19. The advertising agencies releasing an advertisement on behalf of its client shall be deemed to have undertaken to keep the management indemnified in respect of costs, damages or other charges incurred by the Management as a result of any legal action or threatened legal action arising from and in relation to publication of any advertisement published in accordance with the release order and the copy of instructions supplied by the agency.

20. The agency shall bring to the notice of its clients these General Terms and it shall not be open to any of its clients to plead/claim or aver ignorance of these General Terms which apply to every transaction of sale of space in particular issue(s) of any of publications of The Associated Joumals Limited.

21. No agency commission is payable on the on the classified advertisements chargeable at DAVP rates.

22. Fraction of centimetre in excess of the scheduled size shall be charged as full centimetre if the advertisement exceeds the scheduled size. If the material supplied is shorter than the scheduled size, the advertisement will be charged for the size scheduled and not for theactual space occupied or consumed by the advertisement on the basis of the short size material so supplied.

23. The Management shall not be bound by notice of stoporders, cancellations, preponements/postponements or alterations/deletions/ additions in the material(s) of advertisement(s) booked for publication in special or specified position if received less than one week prior to dates of insertion. For ordinary advertisement, the stoppage or not of cancellation must reach at least four days before the scheduled date of publication of advertisement.

24. The Management reserves the rights to revise the rates and terms and conditions without any notice.

25. Every Advertiser/Advertising Agency acknowledges having read and accepted these Terms and Conditions.

26. Courts only in New Delhi, shall have the jurisdiction to entertain and decide all disputes and claims, arising out of publication of any advertisement in the Associate Journals limited publications.

27. The Management shall be at liberty to refuse to carry advertisements/ adjust amounts paid for subsequent ads against pre-existing liabilities, even without carrying such subsequent advertisement.

28. Advertising party hereby agrees to indemnify, defend and hold harmless AJL, it's directors, officers, shareholders and agents against any and all third party claims arising out of or in connection with the content or placement of the advertisement, and to the fullest extent.

29. In no event shall AJL be liable hereunder for any indirect, incidental, special, consequential, punitive or exemplary damages or losses in connection with these terms even if advised in advance of the possibility of arising of such liability, damages or losses.

30. In no event shall AJL's aggregate liability exceed Rs. 10,000 to any advertising party.